सत्यापन क्रमांक : RAJHIN/2015/60530

ओ३म्

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

हिन्दी मासिक

वर्ष : २ अंक : १४ १ फरवरी २०१६ जोधपुर (राज.) पृ.:३६ मूल्य १५० रु वार्षिक

स्वामी दयानन्द सरस्वती

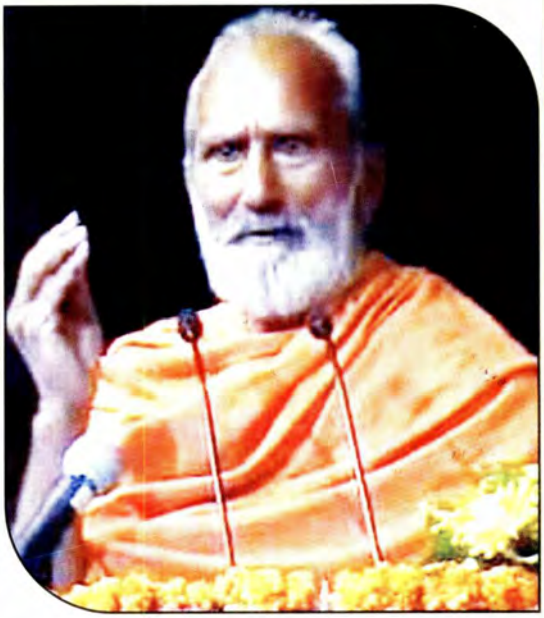

स्वामी बलदेवजी
प्रधान
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
नई दिल्ली

ऋषिवर तेरे अहसाँ को न भूलेगा जहाँ बरसों ।
तेरी रहमत के गीतों को गायेगी ये जुबा बरसों ।

स्मृति भवन न्यास जोधपुर के तत्वावधान में
प्रान्तीय - व्यायाम प्रशिक्षण व व्यक्तित्व निर्माण शिविर की प्रमुख झलकियाँ

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । -ऋग्वेद ९।६३।५

सबको श्रेष्ठ बनाओ

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश का मुख्य प्रयोजन

महर्षि दयानन्द सरस्वती के व्यक्तित्व, कृतित्व, व उनके द्वारा समस्त लिखित साहित्य तथा उनके सार्वभौमिक अद्वितीय कार्यों व सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार स्थापना व व्यवहार में साकार करने के लिये कार्य करना ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर का मुखपत्र

वर्ष : २ अंक : १४

माघ संवत् २०७२

फरवरी २०१६

सृष्टि संवत् १९६०८५३११६

सम्पादक मण्डल :

पं. सत्यानन्दजी वेदवागीश, नोएडा

प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर

डॉ. धर्मवीर, अजमेर

डॉ. सुरेन्द्रकुमार, हरिद्वार

डॉ. वेदपालजी, मेरठ

पं. रामनारायण शास्त्री

आचार्या सूर्यादेवी चतुर्वेदा

विशेष : **महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश** में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं । उनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है ।

कार्यवाहक सम्पादक :

दुर्गादास 'वैदिक'

९९२९३-८२३३५

mail i.d.: info@dayanandsmritinyas.org.

www.dayanadsmritinyas.org.

प्रकाशक :

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर

वार्षिक शुल्क :१५० रुपये

आजीवन शुल्क : ११०० रुपये (१५वर्ष)

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

पायें, पढ़ें, पचायें

	क्या	कहाँ
१.	ईश्वर-स्तुति....	४
२.	वेद मंत्र....	५
३.	विश्व में पहली बार आपके क्लिक पर वेदसागर	७
४.	श्रद्धानन्द उवाच....	८
५.	तीन अनादि	१२
६.	सृष्टि रचना के मूल तत्त्व...	१६
७.	उपासना............	१८
८.	दयानन्द जीवन चरित्र.............	२०
९.	पौराणिक पोल प्रकाश..............	२५
१०.	आयुर्वेद : वृद्धावस्था.............	२७
११.	आर्यसमाज का इतिहास..........	३०
१२.	संस्था समाचार : शिविर सम्पन्न	३३

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास
बैंक ऑफ बडौदा खाता संख्या-01360100028646
IFSC BARB0JODHPU

यह पांचवा अक्षर जीरो है

ईश्वर-स्तुति
प्रार्थना

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः ।
न रिष्येत् त्वावतः सखा ।।२०।।१।६।२०।३।।

व्याख्यान- हे सोम राजन्नीश्वर ! तुम "**अघायतः**" जो कोई प्राणी हम में पापी और पाप करने की इच्छा करने वाले हों "**विश्वतः**" उन सब प्राणियों से हमारी "**रक्ष**" रक्षा करो। जिसके आप सगे मित्र हो "**न रिष्येत्**" वह कभी विनष्ट नहीं होता, किन्तु हमको आपके सहाय से तिलमात्र भी दु:ख वा भय कभी नहीं होगा। जो आपका मित्र और जिसके आप मित्र हो, उसको दु:ख क्योंकर हो ।।२०।।

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ।।२१।।१।२।७।५।।

व्याख्यान- हे विद्वान् और मुमुक्षु जीवो ! विष्णु का जो परम अत्यन्तोष्कृष्ट पद **(पदनीय)** सबके जानने योग्य, जिसको प्राप्त हो के पूर्णानन्द में रहते हैं, फिर वहाँ से कभी दु:ख में नहीं गिरते, उस पद को "**सूरयः**" धर्मात्मा जितेन्द्रिय, सब के हितकारक विद्वान् लोग यथावत् अच्छे विचार से देखते हैं, वह परमेश्वर का पद है। किस दृष्टान्त से ? कि जैसे आकाश में "**चक्षुः**" नेत्र की व्याप्ति वा सूर्य का प्रकाश सब ओर से व्याप्त है वैसे ही "**दिवीव चक्षुराततम्**" परब्रह्म सब जगह में परिपूर्ण एकरस भर रहा हैं। वही परमपदस्वरूप परमात्मा परमपद है। इसी की प्राप्ति होने से जीवन सब दु:खों से छूटता है, अन्यथा जीव को कभी सुख नहीं मिलता। इससे सब प्रकार से परमेश्वर की प्राप्ति में यथावत् प्रयत्न करना चाहिए।।

-आर्याभिविनय से

चतुर्वेद शतकम्

वेद-मन्त्र

यज्ञ की रक्षा करें

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि।

स इद्देवेषु गच्छति। ऋग्वेद।१।१।४।

पदार्थ- **(अग्ने)** हे परमेश्वर! **(यम् अध्वरम् यज्ञम्)** आप जिस हिंसारहित यज्ञ के **(विश्वतः)** सर्वत्र व्याप्त होकर **(परिभूः)** सब प्रकार से पालन करने वाले **(असि)** हैं **(स इत्)** वही यज्ञ **(देवेषु)** विद्वानों के बीच में **(गच्छति)** फैल जाता है।

भावार्थ- धर्मरक्षक परमात्मा, जिस हिंसादि, दोषरहित, स्वाध्याय और अन्न, वस्त्र, पुस्तक विद्यादानादि यज्ञ की रक्षा करते हैं। वही यज्ञ संसार में फैलकर सबको सुखी करता है। इस वैदिक उपदेश से निश्चय हुआ कि जो हिंसक लोग गौ, घोड़ा, बकरी आदि उपकारक और अहिंसक पशुओं को मारकर उनकी चर्बी और मांस से यज्ञ का नाम लेकर होम करते व खाते हैं, यह सब उन हत्यारे याज्ञिक लोगों की स्व कपोलकल्पित लीला हैं। वेदों से इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं हैं।

प्राणियों से निर्भय कीजिये

यतोयतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।

शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः।

यर्जुवेद।३६।२२।

पदार्थ- **(यतः यतः)** जिस-जिस स्थान से अथवा जिस कारण से **(सम् ईहसे)** आप सम्यक् चेष्टा करते हो **(ततः)** उस-उससे **(अभयम्)** अभय दान **(कुरु)** करो। **(नः प्रजाभ्यः)** हमारी प्रजाओं के लिये **(शम् कुरु)** शान्ति स्थापना करो। **(नः पशुभ्यः)** हमारे पशुओं के लिए **(अभयम् कुरु)** अभय प्रदान करो।

भावार्थ- हे दयामय परमात्मन्! जिस-जिस स्थान से अथवा जिस कारण से आप कुछ चेष्ठा करो, उस-उससे हमें निर्भय करो। हमारी सब प्रजाओं को और हमें शान्ति प्रदान करो। संसारभर की सब प्रजाएं आपस में प्रीतिपूर्वक बर्ताव करती हुई सुखपूर्वक रहें और अपने जन्म को सफल करें । आपका उपदेश है कि आपस में प्रीतिपूर्वक बर्ताव करती हुई सुखपूर्वक रहें और अपने जन्म को सफल करें। आपका उद्देश्य है कि आपस में लड़ना-झगड़ना कोई बुद्धिमत्ता नहीं। एक दूसरे से प्रेमपूर्वक रहना, मिलना-जुलना यही सुखदायक है। अतएव आप से प्रभु से प्रार्थना है कि हे दयामय! हम सबको शान्ति प्रदान करो। हमारे गौ तथा अश्वादि उपकारक पशुओं को भी अभय प्रदान करों।

काम-संहार

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया।
समिद्धः शुक्र आहुतः।सामवेद।१।१।१।४।

शब्दार्थ-विपन्यया स्तुति से **(द्रविणस्युः)** अपने प्यारे उपासकों के लिए आत्मिक बल रूप धन चाहने वाला **(समिद्धः)** विज्ञात हुआ **(शुक्रः)** ज्ञान और बल वाला तथा ज्ञान और बल का दाता **(आहुतः)** अच्छे प्रकार से भक्ति किया हुआ **(अग्निः)** ज्ञानस्वरूप ईश्वर **(वृत्राणि)** अविद्यादि अन्धकार दु:खों और दु:ख साधनों को **(जङ्घनत्)** हवन करें।

भावार्थ- हे जगत्पते! आपकी प्रेम से स्तुति, प्रार्थना, उपासना करने वालों को आप आत्मिक बल देते हैं, जिससे आपके प्यारे उपासक भक्त, अविद्यादि पञ्च क्लेश और सब प्रकार के दु:ख और दु:ख साधनों को दूर करते हुए, सदा आपके ब्रह्मानन्द में मग्न रहते हैं। कृपासिन्धों भगवन्! हम पर ऐसी कृपा करो कि हम भी आपके ध्यान में मग्न हुए, अविद्यादि सब क्लेशों और उनके कार्य दु:खों और दु:ख साधनों को दूर कर, आपके स्वरूपभूत ब्रह्मानन्द को प्राप्त होवें।

वह ऐश्वर्य वाला इन्द्र है

यः सोमकामो हर्यश्वः सूरिर्यस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वा।
यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णं य एकवीरः स जनास इन्द्रः।

अथर्ववेद।२०।३४।१७।

शब्दार्थ- (यः) जो परमेश्वर **(सोमकामः)** सोम-ब्रह्मानन्द रस की कामना करने वाले योगिजनों के अति प्रिय **(हर्यश्वः)** मनुष्यों में व्यापक **(सूरिः)** प्रेरक विद्वान् है **(यस्मात्)** जिस परमात्मा से **(विश्वा)** सब **(भुवनानि)** लोक **(रेजन्ते)** कांपते हैं **(यः)** जो **(शम्बरम्)** बादल में **(च)** और **(यः)** जो **(शुष्णम्)** सूर्य में **(जघान)** व्याप रहा है **(यः एकवीरः)** जो अकेला शूरवीर है **(जनासः)** हे मनुष्यो! **(सः इन्द्रः)** वह बड़े ऐश्वर्य वाला परमेश्वर हैं।

भावार्थ- जो परमेश्वर सर्वव्यापक, सर्वज्ञ परमैश्वर्यवान् सब ऐश्वर्य का उत्पादक, ऐश्वर्य दाता है और जो प्रभु आप एक वीर होकर सारे संसार को अपने नियम में चला रहा है, उस महासमर्थ जगत्पिता की कृपा से ही पुरुष ऐश्वर्य और सुख को प्राप्त हो सकता हैं।

विश्व में पहली बार आपके क्लिक पर वेदसागर

भारतीय संस्कृति के प्राणतत्व 'वेद' ही है। आर्यमेधा ने मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है। भारतीय धर्म, दर्शन, आध्यात्म, आचार-विचार, रीति-नीति, ज्ञान-विज्ञान कला आदि ये सभी वेदों से अनुप्राणित हैं। जीवन और साहित्य की ऐसी कोइ विधा नहीं हैं जिसका बीज वैदिक वाङ्मय में न मिलता हो। समष्टि रुप में समग्र भारतीय साहित्य, जनजीवन और सभ्यता की आधारभूमि यदि वेदों को कहा जाए तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

अपने प्रतिभाचक्षु के सहारे साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों के द्वारा अनुभूत आध्यात्म शास्त्र के तत्वों की विमल राशि का ही नाम वेद हैं। सम्प्रति जितने भी मत-मतान्तर देखें जाते हैं। उन सबका मूल स्रोत वेद ही है। वस्तुतः वेद ज्ञान का वह सरोवर हैं, जहाँ ज्ञान की अलौकिक धाराएँ प्रावाहित होकर भारत को ही नहीं अपितु समस्त संसार को उर्वरा बनाती हैं। ये वेद सम्पूर्ण मानव जाति के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं, जिनसे मानवजीवन जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त ओत-प्रोत है। ऐसे ज्ञान के सागर को पढ़ना, समझना और व्यवहार रुप देना अत्यन्त अनिवार्य हैं। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर पण्डित लेखाराम मिशन ने www.onlineved.com इस साईट पर सर्च इंजन का निर्माण किया हैं। जिसकी विशेषताएँ अधोलिखित हैं-

1. विश्व में प्रथम बार वेदों को online किया गया है, जिसको कोई भी इंटरनेट चलाने वाला पढ़ सकता हैं, पढ़ने के लिए पी.डी.एफ. किसी भी फाईल को Download करने की जरुरत नहीं होगी।

2. इस साईट पर सम्पूर्ण चारों वेदों के मूल मन्त्रों के साथ-साथ महर्षि दयानन्द सरस्वती, आचार्य वैद्यनाथ, पं. धर्मदेव विद्यामार्तण्ड, पं. हरिशरण सिद्धान्तालंकार आदि के वेद भाष्य उपलब्ध हैं।

3. इस साईट पर हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी तथा मराठी भाषाओं के भाष्य उपलब्ध हैं। अन्य भाषाओं पर काम चल रहा हैं।

4. यह विश्व का प्रथम सर्च इंजन है, जहाँ पर आप वेदों के किसी भी मन्त्र अथवा भाष्य का कोई भी एक शब्द भी सर्च कर सकते हैं। सर्च करते ही वह शब्द वेदों में कितनी बार आया है, उसका आपके सामने स्पष्ट विवेचन उपस्थित हो जायेगा।

5. इस साईट का सर्वाधिक उपयोग उन शोधार्थियों के लिये हो सकता है, जो वेद व वैदिक वाङ्मय में शोधकार्य कर रहे हैं। उदाहरण के लिए किसी शोधार्थी का शोधविषय है 'वेद में जीव' तब वह शोधार्थी इस साईट पर जाकर 'जीव' लिखकर सर्च करत ही जहाँ-जहाँ जीव शब्द आता है, वह-वह सामने आ जायेगा। इससे अधिक परिश्रम न लगाकर शीघ्र ही लाभ प्राप्त हो सकता है।

6. इस साईट का उपयोग विधर्मियों के जवाब देने के लिए भी किया जा सकता है। जैसे अभी कुछ दिन पहले एक विवाद चला था कि 'वेदों में गोमांस का विधान है' ऐसे समय में कोई भी जनसामान्य व्यक्ति इस साईट का उपयोग कर 'गो' या 'गाय' शब्द लिखकर सर्च करें तो जहाँ-जहाँ वेदों में गाय के बारे में कहा गया है, वह-वह शीघ्र ही हमारे सामने आ जायेगा।

7. आज-कल के पण्डित जो विभिन्न मन्त्रों का हवाला देकर कहते हैं कि अमुक मन्त्र में ये कहा है। इसकी भी पुष्टि इस साईट के द्वारा हो सकती है। आप जिस वेद का जो मन्त्र देखना चाहते हैं, वो मन्त्र आप इस साईट के माध्यम से देख सकते हैं। साईट पर जाने के लिए आपको लिखना होगा- **www.onlineved.com**

ईश्वर स्तुति

प्रार्थनोपासना:

-हरिदेव आर्य

आओ ! सुख की अभिलाषा करने वालो ! परमात्मा की आज्ञा मानते हुए शुभ कर्म में प्रवृत्त होओ। सदा भले पुरुषों की संगत करते हुए ईश्वरीय प्रेरणा से प्रवृत्त होकर अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करो ताकि परमानन्द की प्राप्ति हो।

—धर्मोपदेश

प्यारे भ्रातृगण ! दोनों समय नित्यप्रति सन्ध्या करते हुए ईश्वर से याचना करें और उसकी सत्ता की दया से इस योग्य बनने का यत्न करें कि हमारे मन, वाणी और कर्म सब सत्य ही हों। सर्वदा सत्य का चिन्तन करें, वाणी द्वारा सत्य ही प्रकाशित करें और कर्मों में भी सत्य का ही पालन करें।

—धर्मोपदेश

आंखें बंद करो। ज्ञान-नेत्रों को बलपूर्वक खोलो और देखो उस अनन्त शक्ति को जिसने तुम्हारी रक्षा के लिए हाथ पसार रखे हैं। चले जाओ पूर्ण विश्वास के साथ उसकी गोद में और फिर तुम उस उत्तम अवस्था को प्राप्त हो सकोगे जहाँ पर बुढ़ापे और मृत्यु का भय नहीं रहता।

—धर्मोपदेश

शुद्ध स्वरूप परमात्मा अपने अन्दर प्रकाश कर रहे हैं और हम लोग दीवानों की तरह बाहर जीवन के उद्देश्य को ढूंढ़ते फिरते हैं। बाहर अन्धेरा ही अन्धेरा है। प्रकाश अन्दर है। इसलिए अन्तर्मुखी होकर उस जीवनदाता ज्योति के दर्शन करने का प्रयास करो।

—आर्यों के नित्य कर्म

भगवन् ! यदि हम, भूले हुए तुम्हारे पुत्र, तुमको अन्दर और बाहर प्रत्येक समय में उपस्थित जाना करें तो फिर हमें क्या किसी अन्य शिक्षा की आवश्यकता है। पर्वत के शिखर पर हिम की शोभा तुम्हारी शोभा को ही दर्शाती है, हरे-हरे वृक्षों और वनस्पतियों की तरावट तुम्हारा ही दर्शन करवाती हैं।

—मुक्ति सोपान

हे प्रिय बन्धुवर्ग ! आओ, ईश्वर की आज्ञा पालन करते हुए नित्यप्रति सुगन्धिदायक, अच्छे-अच्छे पुष्टिकारक और बुद्धिवर्धक पदार्थों से अग्नि में हवन-यज्ञ करें और वायु को इन गुणों से युक्त करके अपने शरीर को नीरोग रख सकें जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति में सुगमता हो।

—धर्मोपदेश

जिस घर में प्रात: सायं यज्ञ द्वारा वायु की शुद्धि का उपदेश परमात्मा की ओर से है उस घर में हुक्के की बदबू फैलाने की आज्ञा न दें।

—आर्यों के नित्य कर्म

हे भ्रातृगण! क्या उस परमेश्वर से विमुख होकर, उसे भूलकर, हम कभी भी अपने उद्देश्य को पूर्ण कर सकते हैं? सोचो और चेतो! अब तक हमने समय व्यर्थ गंवाया है। अब तक हमने अपने लक्ष्य को ध्यान न रखते हुए अन्धेरें में हाथ-पैर मार कर उन्हें घायल कर दिया है। जो शक्तियाँ हमें अपनी रक्षा के लिए मिली थीं उन्हें अपने नाश के लिए प्रयोग करते रहे हैं। अब भी समय है और सदा समय है क्योंकि सबका पिता मानुषिक निर्बलताओं से मुक्त, न्याय रूप दण्ड से हर समय हम पर हाथ रखता है। बालक हो या युवा अथवा वृद्ध प्रत्येक को समय है कि हर समय अपने जीवन को पलटा देकर प्रभु की शरण में आन पड़े क्योंकि वहाँ से किसी विश्वासी पुरुष को भी निराश लौटते हुए किसी ने नहीं देखा।

—धर्मोपदेश

उपासना का अर्थ समीप होना है। परमात्मा के समीप होना सन्ध्योपासना का अभिप्राय है। किन्तु परमात्मा शुद्ध स्वरूप है। क्या शुद्ध स्वरूप के समीप अशुद्ध आत्मा कभी हो सकती है? कदाचित् नहीं, अत: मन, वचन और कर्म द्वारा शुद्धि के लिए यत्नवान् होना जरूरी हैं।

—आर्यों के नित्य कर्म

शरीर को स्नान से शुद्ध करने के बाद सत्य से मन को शुद्ध करो, विद्या और तप से आत्मा को शुद्ध करके ज्ञान द्वारा बुद्धि को दिन-रात मांजते रहो।

—आर्यों के नित्य कर्म

प्राचीन आर्य विद्वानों ने अच्छी तरह, समझ लिया था कि शरीर, मन और आत्मा का मनुष्य जन्म में बड़ा घनिष्ट, सम्बन्ध है, इनमें से एक भी अपवित्र रहे तो दूसरे में अपवित्रता उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती ।

—आर्यों के नित्य कर्म

क्या तुम सचमुच परमात्मा को सर्वव्यापक मानते हो? अगर शुद्धस्वभाव स्वरूप परमात्मा के प्रत्येक स्थान पर उपस्थित होने को स्वीकार करते हुए भी तुम्हारा मन अशुद्ध है, अगर उसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, अंधकार के बुरे भाव अब तक उत्पन्न होते हैं, यदि तुम अपनी वाणी से निन्दा, छल और व्याभिचार के शब्द निकाल सकते हो, यदि तुम अपने शरीर से बुरे कर्म कर सकते हो तो निश्चय जानो कि तुमने अब तक उसकी सर्वव्यापकता को अनुभव नहीं किया।

—धर्मोपदेश

दुनियाँ की आँखों में धूल झोंक कर यदि बच भी गये तो सब कर्मों को देखने वाले नियन्ता से बच कर कहां जाओगे। उसकी दृष्टि अन्धेरी से अन्धेरी गुप्त कोठरी से भी तुम्हें ढूंढ निकालेगी।

—अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्

किये कर्म का फल भोगना ही पड़ेगा। कटौती का कोई काम नहीं । बुरे का बुरा और अच्छे का अच्छा फल भोगना ही पड़ेगा।

—मुक्ति सोपान

शीतल जल, मन्द-मन्द सुगन्धित पवन, शरीर को आरोग्य रखने के लिए हमें किसने प्रदान किये? हरियाली की अद्वितीय शोभा से हमारी आंखों को तरावट किसने दी? बुरे कार्यों में प्रवृत्त होते हुए हमें भय, शंका, लज्जा द्वारा नरक कुण्ड में गिरने से कौन बचाता है? उत्तम शिक्षा और पवित्र ज्ञान के भण्डार 'वेद' का हमारे लिये कौन प्रकाश करता है?

—मुक्ति सोपान

वही परब्रह्म परमात्मा जो चक्षुओं का चक्षु, श्रोतों का श्रोत, मन का मन और आत्मा का भी आत्मा है।

—मुक्ति सोपान

उसी (परमात्मा) से हम सब कल्याण मार्ग का ज्ञान पाते हैं। ऐसे पिता, ऐसे पालक और रक्षक को भूलना कैसा महापाप है, उसकी आज्ञा पालन से मुंह मोड़ना कैसी भारी अविद्या है? उसी परमात्मा का स्मरण करो, उसी के गुणों का गान करो जिसने उत्कृष्ट विद्याओं के भण्डार 'वेद' को तुम्हारे लिए खोल दिया है।

—मुक्ति सोपान

प्यारे मित्रो! उस परमपिता की अनुकूलता और उसकी आज्ञा का पालन क्या ही आनन्ददायक है। आओ! हम सब मिलकर उस बलपति के द्वार पर चलें जिससे उनसे बल प्राप्त करके हम इस योग्य हो जायें कि संसार-मात्र की बुरी वासनाओं का मुकाबला करते हुए, उस सबसे महातेजस्वी और परमपिता की स्तुति कर सकें और हमारे लिये सृष्टि के सब पदार्थ सुखदायी हो जाएँ।

—धर्मोपदेश

कौन मनुष्य है जो उस परमात्मा की आज्ञा का उल्लंघन करें और कष्ट या दु:ख में न पड़े और वा निकम्मा न बन जाए। यह शरीर वा आत्मा निकम्मा न रहना चाहिए, गन्दा वा अपवित्र न होना चाहिए। सत्य वा सदाचार को कभी हाथ से न जाने देना चाहिए, क्योंकि आनन्द इसी में हैं। उसी परमात्मा की इच्छा इसी में हैं। सत्य मार्ग का उपदेश यही है। यही स्वर्गधाम है। हे मनुष्यों! और उस परमात्मा के इस उपदेश पर कटिबद्ध हो जाओ।

—धर्मोपदेश

मनुष्य का परम उद्देश्य तीन तापों की परम निवृत्ति बताया गया है। मनुष्य का उद्देश्य यही है कि संसार के अन्दर तीन प्रकार की प्रवृत्तियों से दु:ख मिलता है, उनसे छुटकारा प्राप्त हो। उसी को मोक्ष कहते हैं।

दु:ख मनुष्य को क्यों सताते हैं? इसलिये कि उनके अन्दर मलिनता आ जाती है। इसलिये मलीनता से पृथक् होना ही अपने असल स्वरूप की स्वच्छता को प्राप्त करता है। **—आर्यों के नित्य कर्म**

मनुष्य पवित्र कैसे हो, अपवित्रता को अपने से कैसे दूर फेंक देवे, यह कठिन प्रश्न है जिसके उचित हल जीवन के असली उद्देश्य का हासिल करना निर्भर है। जब जीवात्मा स्वभाव से शुद्ध है तो उसके साथ मलिनता का कैसे सम्बन्ध हुआ ? जब जीवात्मा कार्य जगत् के बन्धनों में फंस जाता है और उसके चारों ओर अन्धेरा ही छाया रहता है, उस समय उस पर राग-द्वेष और सस्मिता आदि धब्बे लग जाते हैं, इसके कारण उसे अपना स्वरूप भी यथार्थ रूप में दिखलाई नहीं देता। इस अपवित्रता से मनुष्य को बचाने के लिये वेद की आशा के अनुसार मनु महाराज ने प्रातः और सायं सन्ध्या का बन्धन स्थिर किया है।

—आर्यों के नित्य कर्म

जब दिन भर विषयों में घूमते-घूमते इन्द्रियां थक जाती है और थक कर मन को छोड़ देती हैं और मन भी थक कर जीवात्मा को छोड़ देता है उस समय पापी जीवात्मा भी अन्तर्मुख होकर परमात्मा के प्रकाश से सहारा लेकर अपनी हेय अवस्था को अनुभव कर सकता है। इसलिये उस समय का परमात्मा से किया हुआ सत्संग उसे रात भर सुख की नींद सोने के साधन पैदा कर देता हैं।

—मुक्ति सोपान

जब फिर यह प्रातः इन्द्रियों और मन की थकावट को दूर करके उठता है तो वह ठीक समय है जबकि इन्द्रियों और मन के लिये नया बल धारण कर नए सिरे से संसार रूपी युद्ध क्षेत्र में काम-क्रोध आदि शत्रुओं के मुकाबले के लिये प्यार हो सकता है।

—आर्यों के नित्य कर्म

यही कारण है कि ऋषियों ने वेदों की आज्ञा पर चलते हुए दोनों काल की सन्ध्या का बन्धन हरेक द्विजन्मा अर्थात् आत्मिक साधन के जिज्ञासु पुरुष के लिये नियत किया है। सन्ध्या से अभिप्राय केवल विशेष मन्त्रों का बिना अर्थ जाप या केवल उनके अर्थ पर मानसिक विचार नहीं है। जीवात्मा की मलिनता को दूर करना ही उसका वास्तविक उद्देश्य है।

क्या तुम्हारे हृदय के अन्दर होते हुए, घोर पाप करते हुए भी उस आत्मिक सूर्य का चमत्कार दृष्टिगोचर हुआ है ? और क्या तुमने उस समय उस मार्ग दर्शक प्रकाश से सहायता लेने का यत्न किया ? अगर नहीं तो तुमसे बढ़कर मन्द भाग्य कौन है ? किन्तु निराश मत होवो, चमत्कार तुम्हें फिर कभी दिखाई देगा। अत्यन्त पाप करने पर भी फिर कभी तुम्हारा अन्तरात्मा प्रकाशित हो जायेगा। उस समय उस अवसर को न छोड़ते हुए अपितु बुद्धि के चक्षुओं को उस दृश्य के अन्दर मग्न करके शान्त चित्त हो जाना।

—मुक्ति सोपान

मनुष्य को कभी निराश नहीं होना चाहिये, परमात्मा पर दृढ़ विश्वास रखना चाहिये।

—कल्याण मार्ग का पथिक

(शेष पृष्ठ १५ पर)

तीन अनादि

आचार्य लक्ष्मीदत्त दीक्षित के
अनादि तत्त्व के दर्शन से

(१) सूत्र- कारण रहित भाव रूप पदार्थ नित्य है।

प्र.- कौन वस्तु नित्य कहाती है?

उ.- जो वस्तु विद्यमान है किन्तु अपनी सत्ता के लिए किसी दूसरे कारण की अपेक्षा नहीं रखती वह नित्य कहाती है। जो पदार्थ उत्पत्ति रहित, निरवयव तथा त्रिकालवृर्ती हो वही नित्य होता हैं।

प्र.-कृपया इस नित्यत्त्व को स्पष्ट करें।

उ.-लोक लोकान्तर में जितने पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं वे विद्यमान तो है किन्तु सभी किसी का परिणाम है अर्थात् कभी न कभी, कही न कहीं और किसी न किसी कारण से उत्पन्न हैं। जो वस्तु अपने अवयवों से मिलकर बनती हैं वह सावयव होने से विकारी एवं अनित्य होगी।

(२) सूत्र- ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीन तत्त्व स्वरूप से अनादि है।

समीक्षा- जो अनादि अनुत्पन्न है वह अनिवार्यत: अनन्त भी है। और जो अनादि एवं अनन्त है वही नित्य है। नित्य होने में उसका कोई कारण नहीं होता।

प्र.- ईश्वर, जीव और प्रकृति इन तीनों का होना क्यों आवश्यक है?

सूत्र- एक में सम्भव न होने से।

उ.- किसी भी कार्य के लिए तीन का होना आवश्यक है, क्योंकि यह संसार भोग और अपवर्ग का साधन है। यदि भोग्य है तो उसका भोक्ता होना आवश्यक हैं। भोग्य और भोक्ता के होने पर भोग्य को प्रस्तुत करने तथा दोनों का नियमन करने वाला भी कोई अवश्य होना चाहिये। इस प्रकार ईश्वर की प्रेरणा से प्रकृति का परिणाम रूप जगत्सर्ग जीवात्मा के भोग के लिए होता है। ऋग्वेद की एक ऋचा (१-१६४-२०) में इन तीनों का स्पष्ट उल्लेख मिलता हैं:-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति।।

भावार्थ:- चैतन्यादि गुणों में सदृश, व्याप्य-व्यापक भाव से संयुक्त, परस्पर सहयोगी दो सत्तायें, अनादि मूल रूप कारण और शाखा रूप वृक्ष अर्थात् प्रकृति से सम्बन्धित हैं। इनमें से एक अर्थात् जीव इस वृक्ष रूप संसार में पाप-पुण्य रूप फलों को अच्छी तरह भोक्ता है। दुसरा परमात्मा 'क्लेशकर्मविकाशयैरपरामृष्ट' होने से फलों को न भोक्ता हुआ सब ओर प्रकाशित हो रहा है।

प्र.- परमात्मा व जीवात्मा का प्रकृति से कैसा सम्बन्ध है?

ड.- परमात्मा प्रकृति का केवल नियन्ता और जीवात्मा उसका भोक्ता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् (१-१२) में यही बात 'भोक्ता भोग्यं प्रेरिता-रञ्च' कह कर स्पष्ट की गई है।

प्र.- ईश्वर तो पूर्ण है तो सृष्टि में उपलब्ध पदार्थों का उपभोग करने के लिए ईश्वर से भिन्न कोई सत्ता अवश्य होनी चाहिये। तो वे सत्ता कौन है?

उ.- इस भोक्ता की संज्ञा 'जीव' है।

(३) चेतन तत्त्व किसी पदार्थ का उपादान कारण नहीं हो सकता। वह केवल उसका कर्त्ता, नियन्ता अथवा भोक्ता हो सकता है। उपादान कारण केवल जड़ हो सकता है। वही प्रकृति हैं। कर्त्ता के बिना क्रिया का होना असम्भव हैं। अचेतन तत्त्व स्वयं कार्यरूप में परिणत नहीं हो सकता। उसे गति देने तथा नियन्त्रित करने के लिए किसी सर्वज्ञ, सर्वव्यापक तथा सर्वशक्तिमान् पुरुष विशेष का होना नितान्त आवश्यक हैं। वही ईश्वर कहाता हैं।

उदाहरणार्थ- ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान; पालक, पालित, पालनसाधन; अध्यापक, अध्येता, अध्यन; व्याख्याता, व्याख्यान, श्रोता; क्रेता, विक्रेता, क्रय योग्य वस्तु आदि जब तक तीन-तीन न हो तब तक सांसारिक व्यापार सम्भव नहीं।

सृष्टि की रचना में ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों कारण है। इनमें से किसी एक के न रहने पर जगत्सर्ग सम्भव न होगा। यदि ईश्वर न हो तो तपस् का प्रेरक कौन होता? तपस् के अभाव में प्रकृति अव्यक्त ही रहती। यदि प्रकृति न होती तो तपस की क्रिया कहां होती? और यदि जीव नहीं होता तो सृष्टि की रचना के निमित्त तपस की क्रिया किसके लिए होती?

ऋग्वेद में अन्यत्र (१०-१२१-१) 'हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे' इत्यादि में आया 'हिरण्यगर्भ' शब्द बड़ा महत्वपूर्ण/अर्थपूर्ण है। यह समस्थ पद ईश्वर और प्रकृति दोनों के लिए संयुक्त शब्द है जिसका स्पष्ट अर्थ हैं कि 'हिरण्य' (प्रकृति) को अपने गर्भ में धारण करने वाला ईश्वर पहले से विद्यमान था।' हां व्यवहार न होने से, सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व प्रकृति अव्यक्त दशा में थी। इससे प्रकृति का निषेध न होकर उसका और ईश्वर का अस्तित्व प्रमाणित होता है।

(४) <u>अब जीव के ईश्वर से भिन्न होने का प्रतिपादन करते हैं।</u>

(१) सूत्र- नित्यौ मिथो भिन्नौ ब्रह्म जीवौ।

ब्रह्म तथा जीव दोनों नित्य तथा एक दूसरे भिन्न हैं।

जीव-

(१) एक देशी तथा अल्पज्ञ

(२) शुद्ध चेतन-अपरिणामी रहता हुआ भी कभी बंद और कभी मुक्त रहता है।

(३) जीव कभी ज्ञानी तथा कभी अविद्या ग्रस्त होता है।

(४) जीव कर्मफल भोगने के लिए शरीर धारण करता है।

ब्रह्म-

(१) सर्वव्यापक - सर्वज्ञ

(२) नित्य शुद्ध - बुद्ध - मुक्तस्वभाव।

(३) ब्रह्म के सर्वज्ञ सर्वव्यापक होने से उसे भ्रम या अविद्या नहीं होती।

(४) ब्रह्म जन्म-मरण के बन्धन में न आकर क्षुधा-तृषा-रोग-भय आदि से सदा मुक्त रहता है।

इस प्रकार जीव और ब्रह्म स्वरूप और वैधर्म्य
से सदा एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं।

सूत्र (२)- सर्वज्ञत्वादि गुणों के कारण।

परमात्मा सर्वज्ञ है तो कुछ ज्ञेय भी होगा। 'सर्व' न होतो सर्वज्ञ परमात्मा कैसा? बिना व्याप्य के व्यापक, बिना उपासक के उपास्य, बिना प्रजा के प्रजापति, बिना स्व के स्वामी आदि की कल्पना कैसे हो सकती है? फिर सर्वज्ञत्व आदि सापेक्ष गुण हैं। यदि कोई सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् तथा अनन्त है तो उससे भिन्न (क्योंकि परस्पर विरोधी गुण एकत्र नहीं रह सकते) कोई अल्पज्ञ, एक देशी होना चाहिये। यदि वह सबसे बड़ा होने से 'ब्रह्म' है तो कोई उससे छोटा भी होना चाहिये। इस प्रकार ब्रह्म से भिन्न जीव तथा जगत का होना स्वत: सिद्ध है।

सूत्र (३)- विधि-निषेध के कारण भी।

समीक्षा- शास्त्रों में अनेकत्र विहित कर्मों के अनुष्ठान तथा निषिद्ध कर्मों के परित्याग का निर्देश किया गया है। 'सत्यं वद, धर्मचर, स्वाध्यायान्मा प्रमद, त्यक्तेन भुञ्जीथा:, मा गृध:, ब्रह्म मुहूर्ते बुध्यते' आदि शब्दों का लक्ष्य क्या ब्रह्म हो सकता है? क्या सर्वज्ञ ब्रह्म को 'कि कर्म किमकर्म' का निर्देश करना आवश्यक है? क्या जूहा खेलने बैठेगा जो उसे 'अक्षैर्मादीव्य:' का उपदेश दिया जाये? ब्रह्म का अपने आप से 'मृत्योर्माऽमृतं गमय' की प्रार्थना करना क्या उपहासास्पद नहीं होगा?

स्पष्ट है इस प्रकार के विधिनिषेधात्मक वाक्य नित्यशुद्ध, बुद्ध-मुक्त-स्वभाव ब्रह्म को लक्ष्य करके नहीं कहे जा सकते निश्चय ही यह सब अल्पज्ञ जीव के लिये है जो ब्रह्म से सर्वथाभिन्न है।

प्र./मान्यता- भिन्न होते हुए भी जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब मात्र है ?

खण्डन- सूत्र- ब्रह्म के निराकार होने से जीव उसका प्रतिबिम्ब नहीं हैं।

स्पष्टीकरण- प्रतिबिम्ब साकार का साकार से होता है। दर्पण और मुख दोनों आकार वाले हैं। इस साकार दर्पण में साकार मुख का प्रतिबिम्ब दीख पड़ता है। ब्रह्म आकार रहित है। अत: उसका प्रतिबिम्ब कभी नहीं हो सकता।

भ्रांति व उसका निवारण- स्वच्छ जल में निराकार आकाश का आभास होता है।

निवारण- सुत्र- निश्चय ही निराकार तथा सर्वव्यापक आकाश का प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता।

समीक्षा- सर्वव्यापक होने से आकाश निराकार है इसलिये जल में उसके प्रतिबिम्ब का प्रश्न नहीं उठता। फिर निराकार होने आकाश द्रश्य भी नहीं। इसलिये वह आंख से देखा भी नहीं जा सकता।

शंका- जो नीला-नीला चन्दोसा ऊपर दिखाई देता है वह आकाश नहीं है तो फिर वह क्या है। इसका स्पष्टीकरण-

(i) स्पष्टीकरण- पृथ्वी, जल और अग्नि के त्रसरेणु ही आकाश नाम से जाने जाते हैं। जल में उसी की छाया पड़ती है, आकाश की नहीं।

(ii) ब्रह्म का प्रतिबिम्ब न होने एक और युक्ति

सुत्र- प्रतिबिम्ब का अधिष्ठान उससे भिन्न होता है।

व्याख्या-अध्यस्त से अधिष्ठान सदा भिन्न होता है। यदि दो पदार्थों में दूरी न हो अर्थात् एक दूसरे भिन्न न हो तो भी एक दूसरे में प्रतिबिम्ब नहीं पड़ सकता। जीव और ब्रह्म को एक मानने पर प्रतिबिम्ब पदार्थ ब्रह्म अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं रहता। अतः अधिष्ठान के अभाव में प्रतिबिम्ब न हो सकने से ब्रह्म का प्रतिबिम्बित होना सम्भव नहीं।

(शेष पृष्ठ ११ का)

जीवन यात्रा के पथिक ! अपने पथ प्रदर्शक को भूलकर तूने कैसी दुर्दशा कर ली ? अभी सम्भलने का समय है। नहीं, नहीं, सम्भलने का सदैव समय। हम अपनी कुटिलता से कितनी बार उस प्रेम, उस पवित्रता उस प्रकाश के स्रोत से अलग होने का प्रयत्न करते हैं किन्तु क्या इतनी ही बार हमारे कुटिलता से खड़े किए हुए बन्धन को छिन्न-भिन्न करके वह अमृत का स्रोत हमें आनन्दित नहीं करता रहा ? पथिक ! निराश मत हो। शुद्ध स्वरूप, प्रकाशमय पिता, संसार की एक-एक घटना में शुद्धि का संचार कर रहे हैं। चाहे हम उन्हें छोड़ क्यों न दें, वे हमें कभी नहीं त्यागते। तब भय को त्याग कर उसकी प्रेम भरी गोद में क्यों न चलें।

—मुक्ति सोपान

प्यारा अन्दर था तूने उसकी बाहर तलाश की, इतनी ही कसर थी। मैंने उसको देखा है, मैंने अमृत के स्रोत में स्नान किया है , चल तुझे भी उसकी ओर ले चलूँ। परन्तु मिलाप सुगम भी नहीं।

—मुक्ति सोपान

चारों ओर भटकने से निराश होकर जब बाहर भटकना बन्द कर दिया "अन्दर के पट तब खुलें जब बाहर के पट देय" अन्दर के पट खुल गये, पहेली सूझ गई। कष्ट क्यों हुआ ? क्लेशों ने क्यों सताया ? इसलिए कि आनन्द को वहाँ ढूंढ़ा जहां वह नहीं था। अब दृश्य ही बदल गया।

—मुक्ति सोपान

सृष्टि रचना के मूल तत्त्व
-जीवात्मा-
(अनादि तत्त्व दर्शन से) -आचार्य लक्ष्मीदत्त दीक्षित-

पिछले अंक में हमने जीवात्मा के सामर्थ्य के बारे में विस्तार से चर्चा करते हुए यह चर्चा की थी कि ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न तो आत्मा के स्वाभाविक गुण है। इसलिये वह ज्ञानपूर्वक इच्छानुसार कर्म करने में स्वतंत्र हैं। इसमें प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

सुत्र (१) शास्त्र द्वारा निर्दिष्ट अर्थ वाला होने से कर्त्ता है।

विवेचना- वेदादि शास्त्रों में विधि-निषेधात्मक अर्थ जीवात्मा को लक्ष्य करके कहे गये है। उनका अधिष्ठाता होने से वह कर्त्ता हैं।

(अ) प्रमाण- श्वेताश्वतर उपनिषद् (५-७) में बताया- ''संसारी जीवात्मा फल प्राप्ति के लिये कर्मों का कर्त्ता है।

(ब) वेदादि शास्त्रों के अनेकों सन्दर्भों में अनेकत्र जीवात्मा के लिए 'किं कर्म किमकर्मेति' का विधान है। विदित कर्मों के अनुष्ठान और निषिद्ध कर्मों के परित्याग का निर्देश होने से स्पष्ट है कि कर्म करने में जीव स्वतन्त्र है।

सूत्र (२)- पाप-पुण्य के फल का भोक्ता होने से।

विवेचना- कर्त्ता ही भोक्ता है- यह न्याय संगत है। यदि जीवात्मा में स्वतन्त्र कर्त्तव्य नहीं होगा तो उसमें भोक्तृत्व भी नहीं होगा। कर्म-स्वातन्त्र्य के मौलिक अधिकार से वंचित होकर यदि जीव परमात्मा की अधीनता में रह कर सब काम उसकी इच्दा और आज्ञा के अनुसार करने पर बाध्य होगा तो पाप-पुण्य के फल का भागी भी परमात्मा ही होगा, जीव नहीं। जैसे- शासन के आदेश से फांसी देने वाले जल्लाद को हत्या का अपराधी नहीं माना जाता।

'कृतं स्मर (यजु. ४०-१५), अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्' (महा.) इत्यादि वचन इस बात की पुष्टि करते है कि जीव अपने कृतकर्मों के लिए उत्तरदायी है। और उत्तरदायी वही होता है जो अधिकार सम्पन्न अर्थात् कर्तुमकर्तुमन्यथाकुर्त्तुम् समर्थ होता है।

जीव के कर्म स्वातन्त्रय की पुष्टि में एक अन्य हेतु-

सुत्र(३)- असत् कर्मों के सम्भव होने।

समीक्षा- (अ) यदि जीव अपनी इच्छा से कर्म न करके जैसा परमात्मा कराये सदा वैस ही किया करे तो संसार में पाप किंचित् न रहे। परमेश्वर स्वयं 'शुद्धमपापविद्धम्' (यजु. ४०-८) शुद्ध एवं निष्पाप है। वह नहीं चाहेगा कि उसकी प्रजा में कोई भी मनुष्य पाप करें। जीव स्वतंत्र किन्तु अल्पज्ञ होने से ही पाप में प्रवृत्त होता है।

(ब) लोग ईश्वर और जीव के यथार्थ स्वरूप को न समझकर कह दिया जाता है कि या तो परमात्मा निष्पाप

नहीं हैं, या सर्वशक्तिमान नहीं है। यदि वह दोनों होता है तो सृष्टि में कही पाप न होने देता।

(स) यदि ईश्वर ने जीव को बनाया होता तो ऐसा होना सम्भव था। वह जीव को अपना जैसा बनाता जैसे बाइबल में लिखा (God made man in his own image) जिससे वह कभी पाप करता ही नही। किन्तु जीव अनादि और अनुत्पना है। यदि ईश्वर ने बनाया होता तो संसार में व्याप्त समस्त भ्रष्टाचार का उत्तरदायित्व ईश्वर पर आ पड़ता। परन्तु जीव स्वभाव से कर्म करने में स्वतन्त्र है। इसलिए जीव जैसा चाहता है करता है।

शंका:- किन्तु शास्त्रों में अनेक अनेकत्र ऐसे वचन भी मिलते हैं जिनसे प्रतीत होता है कि समस्त सृष्टि का संचालन ईश्वर के हाथों में है। अत: जो होता है उसी के आदेश से होता है।

स्पष्टीकरण/समाधान:-

(अ) ईश्वर प्रेरक मात्र है : ऋग्वेद (१-१२१-३०) में **'य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पद'** ईश्वर सब प्राणियों पर शासन व नियन्त्रण करता है।

उपरोक्त मन्त्र के अर्थ को जीवात्मा के कर्म-स्वातन्त्र्य विषयक आधारभूत सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि में विचार करने पर पता लगेगा कि ये मात्र प्रेरणा मूलक है। इस प्रकार की ईश्वरीय प्रेरणा से जीवात्मा के स्वतन्त्र्य में कोई बाधा नहीं आती। प्रेरयिता से प्रेरणा पाकर भी कर्त्ता की स्वतन्त्रता में कोई बाधा नहीं आती। प्रेरयिता से प्रेरणा पाकर भी कर्त्ता की स्वतन्त्रता में व्याघात नहीं आता। प्रेरयिता स्वयं कुछ नहीं करता। कर्म के व्यापर एवं सम्पादन में करने वाला स्वतन्त्र है। जीवात्मा ईश्वर के हाथों में कठपुतली नहीं।

(आ) परमेश्वर स्वेच्छाचारी नहीं है। वह सर्वोपरि राजा है। किन्तु विधाता होने से विधान के अन्तर्गत ही प्रभुसत्तासम्पन्न है। वह सृष्टि का संचालन करता है किन्तु मनमाने ढंग से न करके नियमों के अनुसार करता है। न स्वयं नियमों का उल्लंघन करता है और न किसी को करने देता है।

(इ) इसीलिए गीता में जो यह कहा गया है कि (१८-६१) ईश्वर के नियम रूप यन्त्र में स्थित जीव संसार में विचरण करते हैं।

अब ईश्वरीय प्रेरणा के स्वरूप का निश्चय करते हैं।

सूत्र- भले बुरे की पहचान के लिए सृष्टि के आदि में वेदों का अविर्भाव हुआ। अल्पज्ञ जीव केवल नैसर्गिक ज्ञान के सहारे नहीं ठहर सकता। अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निश्चय करने में स्वत: असमर्थ है। ज्ञानपूर्वक कर्म करने से ही अभीष्ट की सिद्धि सम्भव है। इसलिए मनुष्य के सर्वतोमुखी कल्याण-अभ्युदय तथा नि:श्रेयस् की सिद्धि में सहायक होने के लिए परमेश्वर ने मानव सृष्टि के साथ ही वेद का ज्ञान दिया। वेदानुकुल आचरण करने वाले का मार्ग सर्वथा प्रशस्त हो जाता है। इसलिये 'धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुति: ' कहकर मनु जी के धर्माधर्म का निश्चय करने के लिये वेद की शरण में जाने का परमार्श दिया है।

जो लोग वेदादि नहीं पढ़ते अथवा पढ़ने में असमर्थ है उनके लिये प्रेरणा का क्या स्त्रोत है इसका निर्देश अगले सूत्रों में किया गया।

-उपासना-

(अनादि तत्त्व दर्शन से) आचार्य लक्ष्मीदत्त दीक्षित

पिछले अंक में हमने योग की विघ्न-बाधाओं पर चर्चा की थी। अब हम उन चित्त के विक्षेपों की अलग-अलग अर्थात् प्रत्येक की व्याख्या करेंगे।

(१)व्याधिः- धातु, रस और इन्द्रियों की विषमता को 'व्याधि' कहते हैं।

व्याख्या- शरीर के रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र इन सात धातुओं तथा वात, पित्त और कफ इन तीन प्रकार के दोषों में विषमता-विकार आ जाने से जो ज्वरादि रोग उत्पन्न होते हैं वे व्याधि कहाते हैं। खाये-पिये अन्न जल आदि का परिपाक 'रस' कहाता है। देह तथा इन्द्रियों के रोग चित्त को व्याकुल करते रहने के कारण योग प्रवृत्ति में बाधक रहते है। रुग्ण शरीर द्वारा योग का प्रयत्न सम्यक् नहीं हो सकता।

उपचारः- अतः महाभारत (शान्ति पर्व २७४-८) में योगाभ्यासी को हित, जीर्ण, और मित आहार किया गया है। व्याधि के नाश के लिए प्रकृष्ट उपाय है।

2) सत्यान- चित्त की अकर्मण्यता 'स्त्यान' है।

व्याख्या- कर्त्तव्यज्ञान रहने अथवा इच्छा एवं लाभ की सम्भावना का ज्ञान होने पर भी चंचलता के कारण अकर्मण्य बने रहने अर्थात् चित्त को कार्य में प्रवृत्त न करने या रूचि न लेने को 'सत्यान' कहते है। 'सत्यान' में चित्त अवश होकर इधर-उधर घूमता है।

समाधान/उपचारः- अप्रीतिकर होने पर भी प्रयत्न करते रहने से सत्यान हट जाता है।

(३) 'संशय' - उभयादिक्स्पर्शी विज्ञानं 'संशय' कहाता है।

व्याख्या- 'यह ऐसा है कि ऐसा नहीं' - इस प्रकार जिस पदार्थ का निश्चय करना चाहे उसका निश्चय न होना 'संशय' कहाता है। योगानुष्ठान व उसके फल के विषय में सन्दिग्ध रहना योग में बाधक है। अत्यन्त दृढ़ता और वीर्य पूर्ण प्रयत्न के बिना योग की सिद्धि नहीं हो सकती।

समाधान/उपचारः- श्रवण और मनन के द्वारा तथा आप्त पुरुषों के सहवास से संशय पूरा होता है।

(४) प्रमादः- समाधि के साधनों में भावना का अभाव प्रमाद हैं।

व्याख्याः- जानते हुए भी समाधि के साधक योगागों के ग्रहण में प्रीति न करना तथा उनके अनुष्ठान में उपेक्षा करना प्रमाद कहाता है। मुण्डकोपनिषद् में कहा कि -''प्रमादी को ब्रह्म प्राप्त नहीं होता।''

उपचार- प्रमाद का प्रतिपक्ष स्मृति हैं। महात्मा बुद्ध ने कहा- ''अप्रमाद अमृतपद और प्रमाद का मृत्युपद है।

(५) आलस्य- शरीर तथा चित्त की गुरुतावश अप्रवृत्ति 'आलस्य' है।

व्याख्या - अनुष्ठान में रूचि और सामर्थ्य होने पर भी देहादि की क्रिया द्वारा उसमें न लगना अथवा

मनोयोगपूर्वक कर्त्तव्य में प्रवृत्त न होना 'आलस्य' कहलाता है। कफ आदि दोषों से देह का भारीपन तथा तमोगुण का प्रधान्य से चित्त तमोगुण के प्राबल्य से स्तब्धवत रहता है।

उपचार- मिताहार तथा उद्योग के द्वारा आलस्य पराभूत होते हैं।

(६) अविरति- विषय सेवन में तृष्णा का होना।

व्याख्या- सांसारिक विषयों की ओर से विरक्त का न होना अर्थात् रुप-रस आदि विषयों में तृष्णा का अनवरत बने रहना अविरति कहाती हैं। इससे योग साधनों में प्रवृत्ति का अभाव हो जाता है।

उपचार- वैषयिक संकल्प को त्यागने का अभ्यास करने से 'अविरति' नष्ट हो जाती है।

(७) भ्रान्तिदर्शन- विपरीत ज्ञान 'भ्रान्तिदर्शन' हैं।

व्याख्या- जो ज्ञान जैसा है उसे वैसा ही जानना यथार्थ दर्शन है। इसके विपरीत जानना जैसे जड़ में चेतन और चेतन में जड़ बुद्धि करना अथवा ईश्वर में अनीश्वर और अनीश्वर में ईश्वर की भावना करके पूजा करना आदि 'भ्रान्तिदर्शन' है।

उपचारः- ईश्वर और गुरु के प्रति भक्ति और श्रद्धा भाव रखते हुए योग शास्त्र के अध्यन तथा तद्नुसार अन्तर्दृष्टि की प्राप्ति से भ्रान्तिदर्शन हट जाता हैं।

(८) 'अलब्धभूमिकत्व'- समाधि भूमि का उपलब्ध न होना।

समीक्षा/व्याख्या- योगी का परमलक्ष्य कैवल्य प्राप्ति है। इसकी प्राप्ति का मार्ग बहुत लम्बा है। इस मार्ग पर चार मुख्य स्तर (पड़ाव) आते हैं। क्रमपूर्वक होने वाले योग की सफलता के ये स्तर योग भूमियोग की अवस्था कहाते हैं। इनके नाम है - मधुमति, मधुप्रतीका, प्रज्ञाज्योति, अतिक्रान्ति भावनीय। योगानुष्ठान करते हुए उसकी सफलता के किसी स्तर-भूमि का प्राप्त न होना 'अलब्धभूमिकत्व' कहाता है ऐसी अवस्था में अनुष्ठाता निराश होकर योग मार्ग छोड़ देता है।

(९) **सूत्र**- 'अनवस्थितत्त्व' समाधि भूमि (स्तर) प्राप्त कर लेने पर भी चित्त का अवस्थित न होना 'अनवस्थितत्त्व' है।

व्याख्या- किसी समाधि भूमि की सफलता पर जब अनुष्ठाता को यह अनुभव होता है कि यहाँ पहुचने पर भी चित्तवृत्तियों का निरोध नहीं हुआ है, वह समय-समय पर उभरती और व्यथित करती रहती है तो निराश होकर वह सोचने लगता है कि योगादि सब मिथ्या है। वह आगे प्रयत्न छोड़ बैठता है।

समाधान- वास्तव में चित्तवृत्तियों का पूर्ण निरोध तभी होता हैं जब अनुष्ठाता समाधि की अन्तिम सीढ़ी पर पहुँच जाता हैं। आरम्भिक अथवा मध्यवर्ती सिद्धियाँ चित्तवृत्तियों का पूर्ण निरोध करने में समर्थ नहीं होती।

इन अन्तरायों- विक्षेपों के और भी अनेक साथी है जो अवसर पाकर इन्हें सहारा देते हैं और योगानुष्ठान में बाधा डालने के लिये उठ खड़े होते है। जिनकी चर्चा आगे करेंगे। **क्रमशः**

महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन चरित्र की महत्ता
प्रसिद्ध लेखक देवेन्द्र बाबू द्वारा लिखित

तत्कालीन भारत की राजनैतिक अवस्था – जिस समय भारत के भावी सुधारक ने कर्शनजी के घर जन्म लिया उस समय के भारत का राजनैतिक आकाश यद्यपि मेघाच्छन्न न था, परन्तु निर्मल भी न था । यद्यपि उस समय मुगलों का सूर्य अस्त हो गया था, अंग्रेजों का सौभाग्य थोड़ा थोड़ा उदय होने लगा था और मुगल साम्राज्य के विषादपूर्ण समाधि-भूमि पर ब्रिटिश की जय पताका धीरे-धीरे विस्तार करने लगी थी तथापि देश में शान्ति स्थापित नहीं हुई थी । अनेक प्रकार और आकार के पाप और अत्याचारों में भारत का प्रजावर्ग सदा त्रास और भय का जीवन यापन करता था ।

भारत की सामाजिक अवस्था- भारत की सामाजिक अवस्था इससे भी अधिक शोचनीय थी । समाज के शरीर का प्राय: प्रत्येक अंग रूग्ण था । समाज-मन्दिर की ईट, पत्थर, चूना, कंकड़ी, बरंगा सब-कुछ एक-एक करके अलग होकर गिर रहा था । जिस समाज का गठन आश्रमचतुष्टय और वर्णचतुष्टय की सुदृढ़ भित्ति पर हुआ था उसकी छत और प्राचीरादि धीरे-धीरे टूटकर गिर रहे थे । इसमें संशय ही क्या है कि जो समाज-गृह इस प्रकार विकृत और विपर्यस्त हो जाए उसमें विविध रोग प्रवेश करेंगे और वह नाना प्रकार की अशान्ति और अमंगल की आश्रयभूमि हो जाएगा । इसलिए यह कहना अत्युक्ति न होगा कि भारतवासियों के अन्त:करण से प्रीति, ममता, कोमलता और उदारता आदि वृत्तियों का समूह बहुत-कुछ विलुप्त हो गया था । यही कारण था कि वह गङ्गा-यमुना के दोनों तटों को प्रकाशित करके सैकड़ों-सहस्त्रों अबलाओं के जीते हुए शरीरों को भस्मसात् करने में परम-धर्म की सिद्धि समझते थे । कभी-कभी जीती हुई विधवाओं को पृथिवी में गाड़ देने में भी उनका चित्त अक्षुण्ण रहता था । गला घोटकर, भूमि में गाड़कर वा किसकी प्रकार का विषाक्त द्रव्य पिलाकर कन्यावध करने की प्रथा क्षत्रिय-समाज को कलंकित कर रही थी । कुलीन प्रथा ने सैकड़ों कुल-कामिनियों का विवाह सम्बन्ध से आयुभर के लिए पृथक कर रखा था । नारी तत्कालीन भारत-समाज में पशुओं में ही गिनी जाती थी । यह कहना असत्य नहीं होगा कि इस देश के सामाजिक वर्ग इस बात को बिल्कुल भूल गये थे कि सामाजिक उन्नति और जाति की श्रीवृद्धि नारियों के सम्मान, शिक्षादान और चरित-रक्षण पर निर्भर है । इसके अतिरिक्त नाना आवर्जनाओं, विविध कुरीतियों और बहुविध कदाचारों ने समाज के बलवीर्य, शान्ति और शुद्धता को नष्ट कर डाला था । जैसे सड़क पर एकत्र हुआ जल नाना प्रकार के कृमि-कीटों का आश्रयस्थल हो जाता है, ऐसे ही भारत भी बहुत प्रकार के कृमि-कीट, क्लेद और कर्मद का आश्रयीभूत हो गया था।

भारत की धार्मिक अवस्था- जबकि यम-दम का साधन वा विवेक-वैराग्य का अनुसरण न करके तिलक-लेपन वा त्रिपुण्ड्र धारण ही धर्म का अंग माना जाता था, जबकि साधुता वा सत्यप्रियता स्थानविशेष वा नदीविशेष के नामोच्चारण ही में परिणत हो गई थी, जबकि चित्त की शुद्धि और इन्द्रिय-संयम वस्त्रविशेष के पहनने वा दिनविशेष पर वस्तुविशेष के भक्षण ही पर निर्भर हो गया था,

जबकि मद्यपान-मांसभक्षण परस्त्रीगमनादि घृणित और कुत्सित कर्मों का शिववाक्य कहकर आदर होने लगा था, तब आर्यों का सनातनधर्म बिना आत्महत्या किये कैसे स्थिर रह सकता था ? उस समय आर्यसन्तान उस आत्मघाती धर्म के दुर्गन्धपूरित मृतदेह को कन्धे पर लेकर भ्रान्ति, कुसंस्कार और भ्रष्टाचार के भीषण श्मशान में ताण्डव नृत्य कर रही थी। उस समय न केवल भारत के धर्म ने ही आत्महत्या कर ली थी, अपितु भारत के शास्त्र भी सान्निपातिक रोग से विकृत हो गये थे। जो शास्त्र सर्वप्राचीन, अपौरुषेय और धर्म के आधार होने के कारण सर्वजनमान्य तथा सर्वकालगण्य थे, उन शास्त्रों में निष्ठा और उनकी आलोचना आर्यावर्त्त में लुप्त हो गई थी। वेद का पठन-पाठन एक प्रकार से उठ ही गया था। आर्यसन्तान वेदशून्य होकर सैकड़ों वर्षों से दिन काटती चली आती थी। शास्त्री लोगों ने वेद-वेदाङ्ग का संश्रव छोड़कर ब्रह्मवैवर्त्त और विवर्त्त-विलास का आश्रय ले-लिया था। ब्राह्मणगण वैशेषिक और वेदान्त की बात भूलकर गङ्गालहरी और गोपालसहस्रनाम की बार-बार आवृत्ति करना ही श्रेय कर्म समझने लगे थे। उपनिषदों के अत्युत्कृष्ट कानन में अमृत-फल का स्वाद न लेकर, पुराण, तन्त्रादि के अन्धकाराच्छन्न, कीटपूर्ण और कण्टकाकीर्ण वन में प्रवेश करके कण्टकफलरूप कालकूट का भक्षण करके हिन्दुओं ने अपनी बुद्धि, धृति और विचार-शक्ति को अवसन्न करके अपने आध्यात्मिक जीवन को भी निर्बल, रुग्ण और अकर्मण्य बना लिया था।

काठियावाड़ की अवस्था- यहाँ काठियावाड़ की अवस्था की भी कुछ आलोचना करनी योग्य है। हम पहले कह चुके हैं कि काठियावाड़ की भूमि अधिकतर देशीय राजाओं के शासनाधीन है, परन्तु ईसा की अठाहरवीं शताब्दी स वहाँ मरहटों की शक्ति का प्रभुत्व प्रतिष्ठित हो गया था। पूना के पेशवा और बड़ौदा के गायकवाड़ ने काठियावाड़ के प्रायः सभी राजाओं पर अपना ऐसा आधिपत्य स्थापित किया था कि उनमें से प्रत्येक को इन दोनों शक्तियों को कर देना पड़ता था। गायकवाड़ आज तक भी काठियावाड़ के राजाओं से कर लेते है और पेशवा के पराजित होने के पश्चात् अंग्रेजी गवर्नमैण्ट उनके स्थानापन्न होने की स्थिति से उनसे कर लेती है। सन् १८१७ की सन्धि होने के पश्चात् पेशवा के अधिकारों की अधिकारिणी होकर अंग्रेजी गवर्नमैण्ट ने सन् १८२० ई. से काठियावाड़ में प्रवेश करके अपना प्रभुत्व स्थापित किया।

जब पेशवा वा गायकवाड़ को राजाओं से नियमित रूप से कर प्राप्त नहीं होता था तो कभी तो वे दोनों मिलकर और कभी स्वतन्त्र रूप से काठियावाड़ में फौज भेजा करते थे। यह फौज काठियावाड़ के इतिहास मे मुल्कगीरी फौज के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस फौज के आने पर काठियावाड़ के रहने वालों पर जो विपत्ति आती थी और जो अत्याचार होता था उसे वर्णन नहीं किया जा सकता। वही टङ्कारा, जो दयानन्द की भूमि है, उनके जन्मग्रहण करने से कुछ वर्ष पहले तक कई बार मुल्कगीरी फौज से आक्रान्त होकर, अतिशय विपदग्रस्त हो चुका था। उनके जन्मग्रहण करने से केवल १५ वा १६ वर्ष पहले ही मुल्कगीरी सेनाजनित घोर अशान्ति और भीषण उपद्रव से न केवल टङ्कारा की ही रक्षा हुई थी, बल्कि सारी काठियावाड़ भूमि शान्ति और निरुपद्रवता की गोद में आश्रय ले-रही थी, कारण कि सन् १८०७ ई. में कर्नल वाकर के जमाबन्द बन्दोबस्त के प्रचलित होने के पश्चात् से मुल्कगीरी फौज का आना एकदम बन्द हो गया था। मुल्कगीरी फौज के कारण उत्पन्न होने वाले उत्पीड़न और अपमान, अशान्ति और लुण्ठन आदि से

काठियावाड़ निवासियों की रक्षा करने के उद्देश्य से ही वाकर साहब का जमाबन्दी बन्दोबस्त हुआ था। अस्तु, बहुत काल से मरहटों के प्रभुत्वाधीन रहने और उनसे सम्बन्ध रखने के कारण काठियावाड़वालों के चरित्र में मरहटों के भाषा-भाव, रीति-नीति का प्रभाव स्थापित होना सम्भव है। और वास्तव में हुआ भी ऐसा ही। शिवोपासना और शैवमत के समर्थन में महाराष्ट्र के लोग बहुत अग्रवर्ती हैं। इसलिए इनके संसर्ग से शैवमत का काठियावाड़ में अधिक प्रचार हो गया था। उस समय काठियावाड़-वासियों में वा प्रवासी महाराष्ट्रियों में विट्ठलराव देवजी एक अग्रगण्य व्यक्ति थे। विठ्लराव महाराज गायकवाड़ के प्रतिनिधि की हैसियत से आम्ब्रेली में रहते थे। वे स्वयं भी एक घोर शैव थे। उन्होंने काठियावाड़ में शिवोपासना का प्रचार करने के उद्देश्य से कई स्थानों में शिव-मन्दिर भी बनवाये थे।

इसके अतिरिक्त एक और बात भी थी। मूलजी के जन्मग्रहण करने के समय टङ्कारा ताल्लुक़ा बड़ौदा के प्रसिद्ध सेठ गोपाल मेड़ेल नारायण के अधीन था। धर्मनिष्ठा और शिवपरायणता के लिए मेड़ेल की बड़ौदा अंचल में बहुत प्रसिद्धि है। अस्तु, प्राय: तीस वर्ष तक टङ्कारा के अविच्छिन्न रूप से मेड़ले़ नारायण के अधीन रहने से टङ्कारा में और उसके चारों ओर शैवमत का प्राधान्य स्थापित हो गया था। विशेषकर इस समय टङ्कारा के जमेदार कर्शनजी त्रिवाड़ी के चरित्र में शिवभक्ति और शिवनिष्ठा की मात्रा स्फुटतर और उज्ज्वलतर हो गई थी, यह भी सहज ही में अनुमान हो सकता है। इसमें भी सन्देह नहीं हैं कि स्वामीजी ने स्वलिखित आत्मचरित में शिवभक्ति के प्राबल्य के परिचायक जो दृष्टान्त दिये हैं कि टङ्कारा में स्थान-स्थान पर शिवपुराण का पाठ वा शिवमाहात्म्य का कीर्त्तन हुआ करता था उनके भी मूल में मेड़ेल आदि के संसंर्ग का प्रभाव ही कार्य करता था।

उस समय टङ्कारा के आस-पास वा सारे काठियावाड़ में केवल शैवमत का ही प्राधान्य नहीं था, वल्लभाचार्य के चलाये हुए वैष्णवमत का और स्वामी नारायण के सम्प्रदाय का भी प्रभाव कुछ कम नहीं था। काठियावाड़ के बनियास, लोहाना, भाटिया प्रभृत्ति श्रेणियों के लोग प्राय: सभी वल्लभ सम्प्रदाय में सम्मिलित है और कुन्बी तथा अन्य नीची श्रेण्यिों के लोग अधिकतर स्वामी नारायण के सम्प्रदाय के अन्तर्गत है और काठियावाड़ के प्राय: सभी ब्राह्मण, क्या नागर, क्या उदीच्य और क्या श्रीमाली, शिवोपासक और शैवमत के परिपोषक हैं। कारण अन्य क्षुद्र मतों के रहते हुए भी यही समझना चाहिए कि काठियाबाड़ के सभी लोगों के मानस क्षेत्र पर या बल्लभ सम्प्रदाय या शैवमत अथवा स्वामी नारायण के मत का विशेष प्रभाव पड़ता चला आया है, अत: धर्म-सम्बन्धी शुद्धसार और सत्यभार के बदले दु:संस्कार, अन्धविश्वास और भ्रान्ति से ही काठियावाड़-वासियों की चित्त भूमि समाच्छन्न है। पहले ही कहा जा चुका है कि काठियावाड़ का बहुत थोड़ा भाग अंग्रेजों के शासनाधीन है। इसलिए अंग्रेजी शिक्षा, भाव और सभ्यता प्रणाली का प्रभाव काठियावाड़ वासियों के मन पर बहुत ही कम कार्य कर सका है। अंग्रेजी शिक्षा और भाव में चाहे सहस्र दोष हों, परन्तु यह मानना पड़ता है कि वे स्वाधीन चिन्तन और विचारशीलता के उन्मेषक हैं। जो भाग देशीय राजाओं के शासन में है, उसमें केवल स्वाधीन चिन्तन और विचारशीलता का ही अभाव देखने में नहीं आता, वरन् कर्त्तव्य-निष्ठा और मानसिक बल का अभाव भी देखने में आता हैं।

इन सब कारणों से काठियावाड़ के लोगो की मनोभूमि पर धर्म-सम्बन्धी कुसंस्कारों,

अन्धविश्वास आदि ने दीर्घकाल से अपने प्रभाव का जैसा अधिक विस्तार किया है, वैसा भारत के किसी अन्य भाग में वा अन्यत्र देखने में नहीं आता। स्वाधीन चिन्तन और विचारशीलता के अत्यन्त अभाव के कारण काठियावाड़ के निवासियों को साधारण बातचीत में 'भोला' कहा जाता है इस कारण बहुत-से लोग यह विश्वास नहीं करना चाहते कि दयानन्द काठियावाड़ के रहने वाले थे। इस विषय में हम एक दृष्टान्त दिये बिना नहीं रह सकते।

बांकानेर नगर में बांकानेर के राजकवि सुन्दरजी नाथूराम के साथ भेंट होने पर उन्होंने कहा था कि क्या आप यह मानतें है कि दयानन्द काठियावाड़ के रहने वाले थे? हमने कहा कि निश्चय ही वे काठियावाड़ के रहने वाले थे। इस पर सुन्दरजी बोले कि काठियावाड़ में ऐसे पुरूषसिंह का जन्म नहीं हो सकता। फिर वे बोले कि एक दिन मैं सन्ध्या समय चोटिला की धर्मशाला में जाकर ठहरा। चोटिला राजकोट से १३-१४ मील दूर हैं और बत्तोयान (बड़ोयान) को जाते हुए मार्ग में पड़ता है। धर्मशाला में पहुँचकर मैंने देखा कि वहाँ स्वामी दयानन्द उपस्थित हैं। यद्यपि मैंने स्वामीजी को राजकोट में देखा था, परन्तु वहाँ उनसे वार्त्तालाप करने की सुविधा नहीं मिली थी। धर्मशाला में जब रात्रि में उनके पास चोटिला के थानेदार आदि बातचीत करके चले गये तब मैं उन्हें अकेला पाकर उनके समीप गया और कुछ देर तक उनसे बातचीत की। अगले दिन प्रात:काल उठकर मैंने देखा कि स्वामीजी के नौकर-चाकर प्रस्थान का प्रबन्ध कर रहे हैं। गाड़ीवाला एक मुसलमान मेमन था। उसके बाद स्वामीजी के नौकरों का सम्भवत: भाड़े के ऊपर कुछ वाद-विवाद हो रहा था। धीरे-धीरे यह वाद-विवाद बढ़ता गया और मेमन उन्हें मारने को उद्यत हुआ। नौकरों ने सारा वृत्तान्त स्वामीजी से जाकर कहा। तब स्वामीजी बाहर आये और गाड़ीवाले मेमन की ओर देखकर बोले—"तुम यह मत समझो कि हम केवल साधु वा फकीर हैं। यह मत समझना कि तुम हमारा यथोचित सम्मान न करके हमारे काम की अवहेलना कर सकोगे और जो कुछ तुम्हारा हमसे ठहरा है उससे फिर सकोगे। यदि ऐसा करोगे तो हम एक ही थप्पड़ में तुम्हारे बत्तीसों दाँत तोड़ डालेंगे। यह बात सुनते ही मेमन एकदम चुप और एक मुग्ध व्यक्ति की भाँति उनके सारे सामान को गाड़ी पर लाद और उन्हें बिठाकर थोड़ी ही देर में बत्तोयान की ओर चल दिया।

उपर्युक्त शब्दों को बोलते समय स्वामीजी के मुख के भाव और उनके बोलते के ढंग से उनके असाधारण तेजस्विता का परिचय मिलता था। उससे हमारे मन में यह बात आई थी कि ऐसा मनुष्य कभी भी काठियावाड़ का रहने वाला नहीं हो सकता। यह घटना सन् १८७५ ई. के जनवरी मास की है, जब स्वामीजी राजकोट से अहमदाबाद वापस आ रहे थे। अस्तु, सुन्दरजी का यह अनुमान सर्वांश में निर्मूल नहीं था, क्योंकि काठियावाड़ के लोग साधारणत: इतने भीरुस्वभाव के होते हैं कि अनुमान होता है कि स्वामीजी जैसे तेजस्वी पुरुष को उत्पन्न करने की काठियावाड़ की भूमि में सामर्थ्य नहीं हैं, परन्तु विधाता ने ऐसा ही रचा था कि स्वामीजी काठियावाड़ ही की भूमि में उत्पन्न हों।

मनुष्य-जाति का इतिहास विश्व-विधाता की इस असम्भव को सम्भव बनाने वाली शक्ति के भूरि-भूरि परिचय से परिपूर्ण हैं। रोम, यरोशलम, अण्टियाक, अलक्जण्डरिया के होते हुए ईसा ने उस शहर में क्यों जन्म लिया जो फिलस्ती में सर्वापेक्षा अगम्य था? जो मनुष्य एक साधारण कोयले की खान में

मजदूरी करने वाले की सन्तान था, जो मनुष्य अध्ययन-काल में धनाभाव के कारण गली-गली गा-गाकर पैसा-पैसा संग्रह करता था, वह जर्मनी में इतने धनी-मानी लार्ड और काउण्टों की सन्तान के विद्यमान होते हुए अपरिमेय, प्रतापशाली पोपों के नाश के लिए अग्रसर क्यों हुआ ? और फिर उसी मनुष्य के हुंकारमात्र से सारी यूरोप भूमि क्यों काँप उठी ? बात यह है कि मनुष्य के लिए जो असाध्य है विधाता के लिए वह सहज और सुसाध्य है। मनुष्य की दृष्टि में जो घृणित है ईश्वर की दृष्टि में वह आदृत हैं। जिस भूमि को मनुष्य नानाविध असार लतागुल्म-युक्त और कण्टक-तरुओं का आश्रय-स्थल समझकर त्याग देता है, विधाता उसी भूमि में पारिजात पुष्पों को खिलाकर मनुष्य की बुद्धि को धिक्कृत और उसकी विचारशक्ति को तिरस्कृत कर देता है, अत: इसमें आश्चर्य की क्या बात है यदि विधाता ने भीरुता वा निर्वीर्यता की आश्रयभूमि काठियावाड़ में दयानन्द के समान तेजस्वी, पराक्रमशाली और भय से सर्वथा शून्य व्यक्ति को जन्म दिया।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि धर्म का प्रभाव ही सर्वोपरि हैं। धर्म ही मनुष्य की जीवन-यात्रा का प्रधान परिचायक है। यह सब प्रकार से माननीय है कि मनुष्य के जितने भी छोटे-बड़े सामाजिक वा पारिवारिक कार्य हैं उनके सम्पादन में धर्म ही श्रेष्ठ नियन्ता और परामर्शदाता है। इसलिए जिस प्रदेश में धर्म नाना आवर्जनाओं से मिश्रित हो, बहुत अंशों में कलुषित हो, उस प्रदेश की समाज वा आश्रयनीति अमार्जित वा कलुषित होगी, इसे समझना कुछ कठिन नहीं हैं। अत: इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि काठियावाड़ निवासियों की सामाजिकि अवस्था भी अनेक अंशों में निन्दित और मलिन हो गई थी। एक कन्यावधरूप दुरपनेय कलंक ने ही काठियावाड़वालों के सारे सद्गुणों को (यदि उनमें कुछ थे भी) आच्छादित कर रखा था। यह निष्ठुर और अमानुषिक प्रथा जाड़ेजा लोगों अर्थात् यदुवंशी क्षत्रियों में इतनी अधिक फैली हुई थी कि उतनी भारत के अन्य विभागों के क्षत्रियों में नहीं थी। वल्लभाचार्य सम्प्रदाय के गुरुओं की रीति-नीति इतनी कलुषित थी और धर्म के नाम पर उसका इतने असंकोच के साथ अनुष्ठान होता था कि समय-समय पर उसके कारण न केवल काठियावाड़ में ही अपितु सारी गुजरात भूमि में भी व्यभिचार का स्रोत प्रबल मूर्त्ति धारण कर लेता था। इसके ऊपर स्वामी नारायण मत के महन्तों की दुर्निवार्य धन-पिपासा और धन-संग्रहार्थ नाना कौशल-युक्त चेष्टाएँ काठियावाड़ निवासियों की विचार-हीनता का प्रचुर साक्ष्य प्रदान करती है। हम समझते हैं कि इस विषय में हमें और अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं हैं, क्योंकि जो प्रदेश अन्यों की अपेक्षा विचार-शून्यता, मानसिक दुर्बलता और कर्त्तव्य-शिथिलता में अग्रवर्त्ती हो, उस प्रदेश में देशाचार का मान्य करके चलना ही सामाजिक उन्नति की परकाष्ठा समझी जाएगी, फलत: जिस समय काठियावाड़वालों के चरित्र, धर्म और समाज ऐसी दशा में अवस्थित थे उस समय भारत के आदर्श सुधारक ने काठियावाड़ के उक्त प्रान्त में जन्म ग्रहण किया। टङ्कारा के कर्शनजी त्रिवाड़ी के घर में मूलजी नामक एक शिशु उत्पन्न हुआ।

- क्रमश:

पौराणिक पोलप्रकाश

(१) मृत्युञ्जय आर्यसमाज –पं. मनसाराम ''वैदिक तोप''

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति।

देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।। **– अथर्व. १०।८।३२**

<u>अर्थ–</u> मनुष्य समीप रहनेवाले परमात्मा अथवा अपने आत्मा को नहीं देखता हैं। उस पास रहनेवाले को छोड़ भी नहीं सकता। हे मनुष्य! ईश्वर के काव्य वेद को देख, वह न पुराना होता है और न मरता है।

आत्मा और परमात्मा इतने सूक्ष्म हैं कि बिना विशेष ज्ञान के उनके दर्शन होने असम्भव हैं, किन्तु अदृश्य होने से कोई उनका त्याग भी नहीं कर सकता। उनका ज्ञान प्राप्त करने के लिए परमगुरु परमात्मा की रचना वेद को पढ़ना-विचारना चाहिए। प्रभु का यह काव्य (रसमय उपदेश) सदा बना रहता है, कभी विनष्ट नहीं होता, कभी पुराना नहीं होता अर्थात् वेद में परिवर्तन-परिवर्धन, न्यूनाधिकता और उसका लोप कभी नहीं होता। वह सदा नया बना रहता है। क्योंकि आर्यसमाज का मूलाधार धर्म-पुस्तक ईश्वरीय ज्ञान वेद है जैसा कि आर्यसमाज के तीसरे नियम में स्पष्ट है- 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है' अत: आर्यसमाज भी ईश्वरीय ज्ञान वेद के साथ-साथ सदा ही अमर है। हाँ, पौराणिक सनातन धर्म की मृत्यु में सन्देह नहीं है, क्योंकि उसका मूलाधार धर्मपुस्तक ईश्वरीय ज्ञान वेद अथवा वेदानुकूल स्मृतियाँ नहीं हैं, अपितु उसका मूलाधार अनित्य पौराणिक इतिहास है, जैसा कि गरुड़पुराण में वर्णन है–

तर्केऽप्रतिष्ठा श्रुतयो विभिन्ना:, नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम्।

धर्म्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्, महाजनो येन गत: स पन्था:।।५१।।

–गरुड. आचारकाण्ड, अध्याय १०९

<u>अर्थ–</u> दलील में निश्चलता नहीं, वेदों में विरोध है, एक भी ऐसा ऋषि नहीं है कि जिसकी सम्मति भिन्न न हो। इसलिए धर्म का तत्त्व गुफ़ा में रखा हुआ है। महापुरुष जिस रास्ते से चलें वही धर्म है।

उपर्युक्त प्रमाणों से आर्यसमाज की अमर जोत तथा पौराणिक सनातन धर्म की अकाल मौत स्पष्ट है।

(२) ईश्वर-स्तुति-प्रार्थना

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव।।

–यजु. अ. ३०, मं. ३

अर्थ— हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त, शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर! आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिए। जो कल्याणकारक गुण-कर्म-स्वभाव और पदार्थ हैं वे सब हमको प्राप्त कराइए ताकि हम अज्ञानी, वितण्डावादी पौराणिकों के प्रश्नों का यथार्थ उत्तर देकर वैदिक सिद्धान्तों का संसार में प्रचार करने में समर्थ हों सकें। ओ३म् शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

पौराणिक स्तुति का नमूना—

नूतनजलधररुचये गोपवधूटी दुकूलचौराय।
तस्मै कृष्णाय नमः संसारमहीरुहस्य बीजाय।।

—न्यायमुक्तावली, प्रथम श्लोक

अर्थ— उस नवीन मेघ के समान कान्तिवाले, गोप लोगों की स्त्रियों के कपड़े चुरानेवाले तथा संसाररूपी वृक्ष के बीजस्वरूप श्रीकृष्णजी के लिए नमस्कार हो।

गोपालो कामिनीजारश्चौरजारशिखामणिः।। **—गोपालसहस्त्रनाम**

मातस्तातजटासु किं सुरसरित्किशेखरे चन्द्रमाः, किं भाले हुतभुग्लुठत्युरसि किं नागाधिपः किं कटौ।
कृत्तिः किं जघनद्वयान्तर्गतं यद्दीर्घमालम्बते, श्रुत्वा पुत्रवचोऽम्बिका स्मितमुखी लज्जावती पातु वः।।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पार्वतीप्रकरण

★क्या मेरे पौराणिक भाईयों को इस प्रकार की ईश्वरस्तुति पढकर तनिक भी लज्जा नहीं आती?

✵ जब तुमको किसी बात में सन्देह हो तब पूर्व विद्वान् पक्षपात रहित, धर्मात्मा मनुष्यों से पूछ के शंका निवारण सदा करते रहो। वे लोग जिस-जिस प्रकार से जिस जिस धर्म काम में चलते होवे, वैसे ही तुम भी चला करो। यही आदेश अर्थात् अविद्या को हटा के उसके स्थान में विद्या और अधर्म को हटा के धर्म का स्थापन करता है। इसी को उपदेश और शिक्षा भी कहते हैं।

✵ जो धर्म के लक्षण हैं, वे तब तक प्राप्त हो सकते हैं कि जब मनुष्य लोग सत्य विद्या को पढ़े, और तभी सदा सुख में रहेंगे, क्योंकि सब गुणों में विद्या ही उत्तम गुण है।

(ऋ. भा. भू. वेदोक्त धर्मविषय)

आयुर्वेद

वृद्धावस्था की

आचार सहिंता

यूं तो सभी अवस्थाओं में उचित आचार-सहिता का पालन करना आवश्यक एवं उपयोगी होता है पर वृद्धावस्था में इसकी महत्ता एवं उपयोगिता बहुत बढ़ जाती है क्योंकि इस अवस्था में शरीर की शक्ति, पुष्टि एवं धातुओं की स्थिति वैसी नहीं रहती जैसी पिछली अवस्थाओं में रहती है। इस वक्त शरीर में शरीर के व्यापार का निर्वाह करने के लिए पर्याप्त पूंजी नहीं बच पाती क्योंकि इस आयु में आय से व्यय अधिक होता है अत: स्वास्थ्य रूपी पूंजी की रक्षा करने वाला आचरण करना अत्यावश्यक हो जाता है। वृद्धावस्था की आचार-सहिता के विषय में उपयोगी विवरण प्रस्तुत है।

वृद्धावस्था में करने योग्य आचरण का अभ्यास प्रौढ़ावस्था के दौरान ही कर लेना चाहिए ताकि वृद्धावस्था तक आते-आते वैसे आचरण का अभ्यस्त हुआ जा सके क्योंकि समय रहते चेत जाना ही बुद्धिमानी होता है। प्रौढ़ावस्था आती ही इसलिए है कि हम अपने शरीर और स्वास्थ्य में होने वाले परिवर्तनों को देख-समझ सकें और उनके साथ सामंजस्य स्थापित करने का अभ्यास कर सकें, वैसी मन:स्थिति बना सकें। यह गहरी बातें ध्यान में रखे कि जवानी की अवस्था में वैसा बहुत कुछ होता है जो वृद्धावस्था में नहीं होता। जवानी में वैसा बहुत कुछ कर चुके होते हैं जैसा वृद्धावस्था में नहीं कर सकेंगे और जवानी में जैसा करने के अभ्यस्त हो चुके होंगे वैसा वृद्धावस्था में कर पाने की क्षमता न रह पाएगी। ऐसे अनेक परिवर्तनों की सूचना देने वाली घण्टी से पहले प्रौढ़ावस्था में ही बजने लगती है। जो समझदार, दूरदर्शी और मन को वश में रखने के अभ्यस्त होते हैं वे इस घण्टी का मतलब समझ लेते हैं और अपनी चाल ढाल, दिनचर्या और प्रवृत्तियां प्रौढ़ावस्था में ही, प्रकृति की पूर्व सूचनाओं को समझ कर, सुधार लेते हैं और ऐसे आचार-विचार का अभ्यास करने लगते है जो वृद्धावस्था में उन्हें स्वस्थ और सुखी रख सके।

प्रकृति ने हम पर यह बड़ा उपकार किया है जो बचपन से एक दम जवान हो जाने और जवान से एक दम बूढ़ा हो जाने का नियम न रख कर (बचपन और जवानी के बीच 'किशोरावस्था' तथा जवानी और बुढ़ापे के बीच प्रौढ़ावस्था रखी है) वरना सोचिए ज़रा, बच्चा रात को सोते समय बचपन में होता है और सुबह उठने पर एकदम जवान हो चुका होता है या जवान सुबह उठता तो आईना देखते ही चौंक पढ़ता है कि भई, यह कौन साहब है? मैं तो नहीं हूँ क्योंकि वह रातों रात बूढ़ा हो चुका होता तो कैसी विकट स्थिति होती? ऐसा नियम प्रकृति ने इसलिए नहीं रखा क्योंकि प्रकृति हर काम नियमित, सन्तुलित और विधि-विधान के अनुसार धीरे-धीरे ही करती है। उसके सभी काम अपने नियमों के अनुसार होते हैं और सारे परिवर्तन नियमानुसार होते रहते हैं। इनमें कभी कोई हेरा-फेरी नहीं होती। हम करना भी चाहे तो नहीं कर सकते क्योंकि हम प्रकृति के नियमों का या तो पालन कर सकते हैं, उनको उपयोग में ले सकते हैं या उनकी अवहेलना कर सकते हैं। न तो उनको बदल सकते हैं और न ही उन्हें तोड़-मरोड़ सकते हैं। वृद्धावस्था की आचार-सहिंता का पालन उचित ढ़ंग से किया जा सके, इसके लिए इन कुछ मुद्दों को हमें पूरी तरह से ध्यान में रखना होगा और इन्हें याद रखना होगा क्योंकि याद है तो आबाद है और भूल गया तो बरबाद हैं।

वृद्धावस्था की आचार-सहिंता को भी दो भागों में विभक्त करके समझना होगा। एक तो मानसिक और दूसरा शारीरिक। शारीरिक भाग से अधिक महत्वपूर्ण भाग मानसिक मामलों का होता है अतः पहले मानसिक भाग के विषय में ही कुछ खास मुद्दों पर संक्षेप में चर्चा करेंगे।

मानसिक स्वास्थ्य

वृद्धावस्था में मानसिक रूप से स्वस्थ बने रहने के लिए उन सभी बातों को न सिर्फ याद ही रखना होगा बल्कि उन पर आचरण भी करना होगा जिनकी चर्चा हम गत वर्षा ऋतु अंक में **'प्रौढ़ावस्था की आचार-सहिंता'** के अन्तर्गत मानसिक स्वास्थ्य के विषय में विवरण देते हुए कर चुके हैं लिहाज़ा यह ज़रूरी है कि आप उस विवरण को फिर से पढ़ लें और ध्यान में रखते हुए ही इस विवरण को पढ़ें।

वृद्धावस्था में सबसे महत्वपूर्ण बात याद रखने योग्य यह होती है कि जिस मानसिकता के, आदतों के और मनोवृत्ति के हम युवावस्था में अभ्यस्त हो चुके होते हैं वह **शारीरिक तल पर वृद्धावस्था मे न तो व्यवहारिक होती है और न ही हितकारी**। यह बड़ा मुश्किल काम हो जाता हैं यदि प्रौढ़ अवस्था में ही इसमें उचित सुधार और हितकारी परिवर्तन न कर लिया गया हो। जो स्त्री पुरुष प्रौढ़ावस्था में जवानी को जाते हुए और बुढ़ापे को आते हुए देख कर अपनी मानसिकता और आदतों में उचित परिवर्तन कर लेते हैं **वे ही वृद्धावस्था में मानसिक रूप से स्वस्थ बने रहते हैं, प्रसन्न और सन्तुष्ट बने रहते हैं।**

वृद्धावस्था में मानसिक स्वास्थ्य से सम्बन्धित जिन खास-खास बातों का ध्यान रखना और पालन करना हितकारी होता है वे है- किसी भी तरह की अति करने की प्रवृत्ति न रखना, सन्तोष धारण करना, आसक्ति न रखना और परोपकार करने की भावना बलवती रख कर आचरण करना। यदि इन चार बातों का ही पूरा-पूरा पालन करते हुए आचार-सहिंता का पालन किया जाए तो स्त्री-पुरुष **वृद्धावस्था में भी स्वस्थ और प्रसन्न बने रह सकते हैं**। इन चारों मुद्दों की संक्षिप्त व्याख्या प्रस्तुत है।।

अति न करना- पाठक-पाठिका इस मुद्दे पर अनेक बार विवरण पढ़ चुके हैं और यह भली-भाँति समझ चुके हैं कि **'अति सर्वत्र् वर्जयेत्'** यानि सभी जगह, सभी कामों में और सभी तरह की अति करना वर्जित किया गया है। फिर जवानी में तो शक्ति और सामर्थ्य के बल पर अति करना धक भी जाता है पर वृद्धावस्था में तो ऐसा सम्भव नहीं हो पाता, और यदि सम्भव हो भी जाए तो दुःख एवं व्याधि उत्पन्न करने वाला ही सिद्ध होता है लेकिन सबसे बड़ी दुःखद बात यही होती है कि अति न कर पाने पर भी अति करने की लालसा रखना, ऐसी नाकाम कोशिश करना और ऐसी मनोवृत्ति बनाए रखना स्वभाव बन चुका होता है। वह कहावत है न कि **चोर, चोरी से जाए पर हेरा-फेरी करने से बाज न आये** तो कई स्त्री-पुरुष अपनी आदतों से विवश हो कर वृद्धावस्था में भी अति करने की कोशिश करते हैं **और दुःख, निराशा तथा हीन भावना से ग्रस्त बने रहते हैं।**

सन्तोष धारण करना- एक कहावत है कि **सन्तोषी सदा सुखी**। यह कहावत वृद्धावस्था में तो शत-प्रतिशत रूप से गुणकारी सिद्ध होती हैं। मनुष्य चाहे कितना कुछ कर ले, कितना कुछ पा ले, अगर सन्तोषी स्वभाव का न हो तो सुखी नहीं हो पाता क्योंकि वह जितना कुछ कर लेता है उससे ज्यादा करने की इच्छा रखता है और इच्छा पूरी न होने पर दुःखी होता है। इस दुःख से बचने का एक ही उपाय है कि मनुष्य अपनी

क्षमता और आवश्यकता के अनुसार ही इच्छा करे और **इच्छापूर्ति करके सन्तोष धारण कर लें।**

<u>आसक्ति न रखना</u>- इस आयु में स्त्री-पुरुषों को प्रत्येक कार्य अनासक्त होकर, निष्काम भावना से, सिर्फ कर्त्तव्यपालन करने की भावना से ही करना चाहिए, क्योंकि जीवन कब समाप्त हो जाए इसका कोई ठिकाना नहीं तो आसक्ति रखने से क्या लाभ? एक दिन संसार की प्रत्येक वस्तु छोड़नी ही है और सब हमें छोड़ने वाले हैं तो आज से ही सबको मन से क्यों न छोड़ दिया जाए? '**अन्तहु तोहि तजेंगे पामर, काहे न तजे अब ही ते**' के अनुसार जो तुझे अन्त में छोड़ देने वाले हैं उन्हें हे मूर्ख (मन)! तू आज से ही क्यों नहीं छोड़ देता ताकि शरीर छोड़ते समय किसी को छोड़ने का , किसी से बिछुड़े का शोक न करना पड़े। वृद्धावस्था में ऐसी भावना को धारण करना ही **मानसिक रूप से स्वस्थ और प्रसन्न रखने वाला मूल-मन्त्र हैं।**

<u>परोपकार की भावना</u>- जीवन भर मनुष्य उपकार, अपकार और शुभ-अशुभ कर्म करता ही रहता है लेकिन वृद्धावस्था में तो उसे परोपकार ही करना चाहिए क्योंकि परोपकार से बढ़कर कोई पुण्य नहीं जैसा कि कहा है- '**परोपकाराय पुण्याय पापाय परडीनम्**' अर्थात् दूसरों का भला करना ही पुण्य है और किसी को दु:खी करना, पीड़ा देना ही पाप है। अब जितना जीवन शेष है उतने समय में परोपकार कर पुण्य संचित करना और पाप से बचना ही श्रेयस्कर है क्योंकि **इस संसार से जाते समय सब कुछ यहीं छूट जाता है सिर्फ अच्छे-बुरे कर्म ही साथ जाते हैं जो अगले** जीवन में काम आते हैं लिहाजा अब सिर्फ अच्छे कर्म ही संचित करना चाहिए ताकि शरीर छोड़ते समय **हमारे साथ अच्छे कर्मों की संचित पूंजी अधिक से अधिक मात्रा में जा सकें।**

शरीर स्वास्थ्य

शारीरिक रूप से स्वस्थ रहने के लिए वृद्धावस्था में एक मोटा सिद्धान्त याद रख कर इस पर अमल करना चाहिए। यह सिद्धान्त है- **कम खाना और गम खाना**। संक्षेप में इस सिद्धान्त की व्याख्या प्रस्तुत है-

<u>कम खाना</u>- कोई पदार्थ कितना ही स्वादिष्ट और मन को प्रिय हो, उसे अपनी पाचन-शक्ति के अनुकूल मात्रा से भी थोड़ी कम मात्रा में खाना चाहिए ताकि वह पदार्थ भली भांति पच कर शरीर का पोषण करे, अपच के कारण शरीर का शोषण न कर सके। पोषक और बलवर्द्धक पदार्थ भी यदि ठीक से पच न सके तो शरीर के लिए हितकारी न हो कर अहितकारी सिद्ध होता है। इसलिए भूख और इच्छा से थोड़ी कम मात्रा में ही खाना उचित होता हैं।

<u>गम खाना</u>- गम खाने के दो अर्थ हैं- पहला तो सर्वविदित है कि सब्र करना, सन्तोष करना जिसके विषय में ऊपर चर्चा की जा चुकी है, पर एक गहन अर्थ और भी है कि कोई गम, कोई दु:ख सहना नहीं बल्कि उसे खा कर पचा जाना। **दु:ख को सहन करने से घुटन और कुण्ठा उत्पन्न होती है पर खा कर खत्म कर देने से बात ही खत्म हो जाती हैं।** दु:ख को सहन न करके उसे खत्म कर देना, उपेक्षित कर देना ही अच्छा होता है और **इसे ही मुहावरे की भाषा में 'ग़म खाना' कहा गया हैं।**

ईसाई मत

-इन्द्र विद्यावाचस्पति

ईसा यहूदी धर्म में पैदा हुआ और उसी में पला। वह पुरानी बाइबिल को मानता था, और ईसाई आज तक उसे पूज्य मानते हैं। ईसा ने यहूदियों के उस समय विद्यमान सिद्धान्तों को अपने नए विचारों का आधार बनाया। जो कुछ उसने कहा वह एक सुधारक की दृष्टि से था, निर्माता की दृष्टि से नहीं। यहूदी धर्म पर पालिश कर देने से ईसाई धर्म बन गया, इसमें सन्देह नहीं।

यहूदी धर्म और ईसाई धर्म का परस्पर कार्य-कारण भाव ऐसा सर्वसम्मत है कि उसके सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं। असली वृक्ष यहूदी धर्म का ही था, जिस पर पेबन्द लगने से ईसाई धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। यह विषय निर्विवाद है। विवाद है तो इस पर कि वह पेबन्द कौन सा था जिसने यहूदी धर्म को ईसाई धर्म बना दिया। हमें वह प्रभाव ढूँढ़ना चाहिए जिसने इस नये विश्वव्यापी धर्म को जन्म दिया।

एक और भी जरूरी प्रश्न है। समझा जाता है, और बहुत-से विद्वान् इस विचार की पुष्टि करते हैं कि बाइबिल से ईसा का जो जीवन-चरित प्राप्त है वह ठीक नहीं हैं। कई विद्वान् कहते है कि क्राइस्ट कोई था ही नहीं, क्राइस्ट की कल्पना पीछे से की गई। इसी मत को मान कर कई विचारकधुरन्धरों ने क्राइस्ट को तो कृष्ण का रूपान्तर माना है। जो विविध प्रकार के मत इस सम्बन्ध में पाये जाते हैं, वह हम **Early Christianity** के लेखक **M.S.B. Slack** के शब्दों में उद्धृत करते हैं। आप लिखते है:

"The author would, however, not be justified in ignoring the fact that there is another group of critics who reject who the gospels a altogether unhistorical. The first scientific hidtorfian eho took up this position was Brono bauer, who had the misfort une to live before his time. Among others more or less pronouced opponents of the 'Historicala School' are Frazer (Pagan Christ) P. Mead (Did Jesus Live 100 B.C ?) Kalthoff, Jensen (who regards the New Testament and Tismat), Balland and W.S Smith (Der Vorchristrlicho jesus). Gurkel, who speaks with great modera-tion,says that Christology of Paul and John cannot have been derived from the jesus own reflections. on the contrary, it existd before product of their own reflections. On the contrary, it existd before their time,and in all its assential elements papallels can be found in other religions. Some critics go so far as to suppose that there never was any historical jesus at all. Others think that though the jesus on whom the synoptical Gospels speak once lived, nevertheless the life of jesus as there described has only a remote resemblance to that of trhe real jeses."

"किन्तु ग्रंथकर्ता को यह लिखने की भी उपेक्षा न करनी चाहिए कि ऐसे समालोचकों का भी एक समूह है जो गौस्पल को ऐतिहासिक नहीं मानता। पहला वैज्ञानिक इतिहासवेत्ता जिसने यह स्थिति ली थी बूनी बायर था जो दुर्भाग्यवश अपने समय से पूर्व आ गया था। इस ऐतिहासिक पक्ष के न्यूनाधिक अन्य स्पष्ट विरोधियों में से कुछ ये है: फ्रेज़र (दि गोल्डन बौ), राबर्टसन (पैगन क्राइस्ट), मीड (क्या जीजस

ईसा से १०० वर्ष पहले पैदा हुआ था?), कल्थौफ जेंसेन (जो न्यूटेस्टामेंट की कहानी को बेबिलोनिया के ग्लोसस और तियामत की कहानी का रूपान्तर कहता है), बैलैंड और बी.बी.स्मिथ। (गन्कल जो बहुत नर्मी के साथ लिखता है, कहता है कि पाल और जान की ईसाइतम ईसा और गौस्पल से पैदा नहीं हुई और न ही वह उनके दिमाग का नतीजा थी)। मुख्य अंशों में पहले से विद्यमान थी, और सभी आवश्यक विषयों में अन्य धर्मों में समानताएँ मिल सकती है। कई लेखक तो यहाँ तक कहते हैं कि ईसा कोई था ही नहीं। दूसरे समझते हैं कि वह ईसा था तो सही, जिसका हाल बाइबिल बताती है, किन्तु वहां ईसा की जैसी जीवनी लिखी है, वह असली जीवनी से थोड़ा ही साम्य रखती हैं।''

इस लम्बे उद्धरण के लिए हम क्षमा माँगते हैं, पर यूरोप के विचारों का प्रवाह दिखाने के लिए यह आवश्यक था। इस उद्धरण से दो बातें साफ प्रतीत होती हैं। एक तो यह कि यूरोप के विचारकों की सम्मति हो रही है कि ईसा का जैसा चित्र बाइबिल में खींचा गया है, वह वैसा न था। वह चरित पीछे से कल्पित किया गया है। दूसरी बात यह कि ईसाईयत के नाम से जो धर्म इस समय प्रसिद्ध है, वह कोई स्वतन्त्र और नया धर्म न था, अपितु अपने से पूर्व धर्मों पर आश्रित था। हमें दो बातों का पता लगाना है। वह कौन-सा ढ़ाँचा था जिसके अनुसार ईसा के चरित की कल्पना की गयी, और वे कौन-कौन सो धर्म थे जिनसे मसाला लेकर ईसाई धर्म बनाया गया? पहले ईसा के आत्मगत चरित को लीजिये। उसका पाठ करके देखिये कि वह किस नमूने पर बनाया गया है। यदि ईसा के पूर्ववर्तियों में से कोई भी उसके विद्यमान चरित का नमूना हो सकता है, तो वह गौतम बुद्ध है। दोनों के चरित में जो समानतायें हैं उनमें से कुछ हम यहाँ उद्धृत करते हैं।

दोनों की उत्पत्ति आश्चर्यदायक कही गई है। दोनों की उत्पत्ति के समय दिव्य लक्षण दिखाई देते हैं।

गौतम बुद्ध की उत्पत्ति के समय असित ऋषि उसके भविष्य की सूचना देने के लिए राजगृह में आते हैं, और क्राइस्ट के उत्पन्न होने पर जैरूसलम के पूर्व से एक बुद्धिमान् पुरुष आता है और पूछता है कि वह कहाँ है जो यहूदियों का राजा बन कर पैदा हुआ है।

बुद्धदेव को मार (काम) के आक्रमणों का सामना करना पड़ा तो ईसा पर शैतान ने धावे किये, और परास्त हुआ। दोनों ही महापुरुषों के बारह शिष्य थे। दोनों का दया भाव समान था, दोनों के दयालुता के कार्य सदृश थे। दोनों के जीवनों में इतनी समानता है कि स्वतन्त्र विचारक काउण्ट कैमिली डिरौनिसी अपनी 'जीजस क्राइस्ट' नाम की पुस्तक में निम्नलिखित शब्द लिखने के लिये बाधित हुआ है:

''हिन्दू त्रिमूर्ति का एक देव कृष्ण कुछ सदियों पूर्व पैदा हुआ था, उसी प्रकार ईसा से कुछ सदियाँ पूर्व भारत के गाँव में, एक कुंवारी के पेट से एक देवता उत्पन्न हुआ, और उसी प्रकार ईसा भी बैथलहम में उत्पन्न हुआ। यह देवता गौतम शाक्य मुनि जानता था कि मनुष्य जाति की स्थिति के साथ दु:ख बंधा हुआ है; इन सब दु:खों का कारण हमारी बढ़ी हुई इच्छाएँ और दुर्भावनाएँ हैं..........इत्यादि।

जीजस क्राइस्ट चालीस दिनों तक जंगल में रहा था, शाक्य मुनि ईसा से छ: सदियाँ पूर्व, ४९ दिनों तक जंगल में बोधि वृक्ष के नीचे व्रत और ध्यान में लगे रहे थे और मार के आक्रमणों और प्रलोभनों को

सफलतापूर्वक रोकते रहे थे। वहाँ से वह बनारस को गया, जैसे पीछे से ईसा गैलिली को गया और शिष्यों को अपने सिद्धान्तों का उपदेश दिया, वही शिष्य बौद्ध धर्म नाम के नए धर्म के संस्थापक हुए।''

इस उद्धरण में कई ऐतिहासिक भूलें है। गौतम बुद्ध उस प्रकार ईश्वर के अवतार नहीं माने जाते, जैसे ईसा माना जाता है। कृष्ण और बुद्ध कुमारी के पुत्र नहीं थे, परन्तु इनके अतिरिक्त बुद्ध और ईसा के जीवनों में इतना साम्य है कि जिस पर विश्वास करना भी कठिन है। हम कुछ समानताएँ यहाँ दिखाते हैं।

१. दोनों की उत्पत्ति अद्‌भुत है। दोनों की उत्पत्ति के समय विलक्षण शकुन दिखाई दिए और दोनों का ही एक-एक नक्षत्र स्वामी था।

२. गौतम बुद्ध की उत्पत्ति पर असित ऋषि मंगल सूचना देने के लिए आया था और ईसा के उत्पन्न होने पर भी पूर्व से एक बुद्धिमान् का आना लिखा है।

३. दोनों पर ही तपस्या के समय मार या शैतान के आक्रमण हुए, जिनमें आक्रमणकारी नाकामयाब रहा।

४. गौतम और ईसा दोनों ही के बारह शिष्य थे।

सिद्धान्तों की समानता :

यह तो है संस्थापकों के चरित्रों में समानता। अब दोनों के धर्मों के मुख्य सिद्धान्तों की आलोचना करें तो समानता और भी गहरी दिखाई देती है। हम कुछ समानताएँ यहाँ देते हैं:

१. बौद्ध और ईसाई धर्म में धार्मिक सिद्धान्तों के वर्णन एक ही रीति का अवलम्बन किया गया है।

२. दोनों धर्मों ने ही प्रेम धर्म का प्रचार किया है।

३.दोनों ही धर्म शब्दमय जीवन की अपेक्षा क्रियात्मक जीवन पर अधिक बल देते हैं।

४. दूसरों की भलाई का सिद्धान्त दोनों ही धर्मों को माननीय है।

५. पुराने बौद्ध मन्दिरों की बनावट के साथ, रोमन कैथोलिक गिर्जों की बनावट कई समानताएँ रखती हैं।

६. बौद्ध और रोमन कैथोलिक ईसाईयों के रीति-रिवाज आपस में बहुत मिलते हैं।

७. बप्तिस्मा (दीक्षा) देने की रीति भी ईसा से पूर्व बौद्ध लोगों में विद्यमान थी।

यहाँ हमने बीज मात्र का उल्लेख किया है। मि. आर्थर लिली आदि विद्वानों ने अपने ग्रंथों में बहुत ही विस्तार से इस विषय की विवेचना करके दिखाया है कि ईसाई धर्म बौद्ध धर्म का पुत्र था। दोनों धर्मों की समानता आकस्मिक नहीं हो सकती। यदि यह आकस्मिक मोजजा हो तो मि. रिस डेविड्स के कथनानुसार यह एक बड़ा भारी मोजजा है जो दस हजार मोजजों के बराबर है। लिली, साइडल और आर. सी. दत्त आदि विद्वानों ने इस बात को कई प्रमाणों से सिद्ध कर दिया है कि ईसाई मत ने बौद्ध मत से बहुत अधिक बातें सीखी हैं। (क्रमशः)

आर्यवीर दल राजस्थान का शीतकालीन प्रान्तीय प्रक्षिक्षण शिविर सम्पन्न

आर्य समाज के युवा संगठन आर्यवीर दल राजस्थान का आठ दिवसीय व्यायाम व चरित्र निर्माण शिविर महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर में 27 दिसम्बर 2015 से 03 जनवरी 2016 तक आयोजित किया गया। शिविर का उद्घाटन 27 दिसम्बर को दोपहर 3: 30 बजे आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के प्रधापन श्रीमान् विजयसिंह भाटी की अध्यक्षता एवं आर्य जयसिंह गहलोत के मुख्यातिथ्य में हुआ। इस अवसर पर आर्यवीर दल राजस्थान के बौद्धिकाध्यक्ष आचार्य रामनारायण शास्त्री ने अपने उद्बोधन में कहा कि 'यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्पञ्चौ चरतः सह' अर्थात् राम के समान क्षत्रिय धर्म के साथ-साथ ब्रह्म ज्ञान द्वारा आधात्मिक विकास करते हुए संस्कृति की रक्षा कर सकते हैं।

आर्यवीरों को केवल शरीर से ही नहीं अपितु आत्मिक दृष्टि से भी मजबूत होना चाहिए। जिससे अपने बल का प्रयोग हम राष्ट्र एवं संस्कृति की रक्षा के लिए कर सकें। अध्यक्षीय उद्बोधन में श्री विजयसिंह भाटी ने कहा सत्य वचन एवं सद्व्यवहार जीवन का अंग होना चाहिए। प्रान्तीय मंत्री भवदेव शास्त्री ने शिविर की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहा कि जिस प्रकार बिना पुत्र के माँ बाँझ कहलाती है। उसी प्रकार किसी भी संस्था का भविष्य उसके कार्यकर्त्ता पर निर्भर करता है। आर्यवीर दल शिविरों के माध्यम से युवाओं को वैदिक संस्कृति के रक्षार्थ संस्कार दिए जाते हैं। इस कार्यक्रम के संचालक विमल शास्त्री ने बताया कि आठ दिवसीय शिविर में राजस्थान के 15 जिलों के 250 आर्यवीर भाग ले रहे हैं।

शिविर दिनचर्या प्रातः चार बजे जागरण से रात्री 10 बजे तक सुव्यवस्थित रुप से थी जिसमें संध्या यज्ञ, सर्वांग सुन्दर व्यायाम, सूर्य व भूमि नमस्कार, योगासन, दण्ड बैठक, लाठी संचालन, लकड़ी व रस्सा मल्लाखम्भ, क्रीड़ा एवं स्तूप निर्माण कला का प्रशिक्षण दिया गया। शिविर के दौरान आर्यवीरों का यज्ञोपवीत संस्कार किया गया। शिविर के मध्य में आर्यवीरों को जोधपुर का भ्रमण करवाया गया जिसमें मेहरानगढ़ तथा जन्तुआलय (पब्लिक पार्क) आदि स्थानों पर भ्रमण किया गया।

शिविर में बौद्धिक विकास के लिए एवं वैदिक सिद्धान्तों से अवगत कराने के लिए आचार्य यशवीर, आचार्य अशोक एवं आचार्य कर्मवीर के विशेष व्याख्यान हुए। शिविर में प्राथमिक चिकित्सा का प्रशिक्षण आगरा से पधारे सत्यव्रत शास्त्री द्वारा दिया गया। शिविर में प्रधान शिक्षक यतीन्द्र शास्त्री, व्यायाम शिक्षक सुशील आर्य, दिनेश आर्य, गगेन्द्र आर्य, जितेन्द्र आर्य, घनश्याम आर्य, राजमल आर्य, सत्यनारायण आर्य आदि शिक्षकों ने प्रशिक्षण दिया।

शिविर भव्य व्यायाम प्रदर्शन के साथ सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर आचार्य कर्मवीर की आर्यवीर दल राजस्थान के प्रान्तीय संयोजक के रूप में नियुक्ति की गई।

शिविर संयोजक किशनलाल आर्य ने आर्यवीर दल राजस्थान के प्रान्तीय संचालक सत्यवीर आर्य,

कार्यकारी संचालक, देवेन्द्र शास्त्री, प्रान्तीय मन्त्री भवदेव शास्त्री, कोषाध्यक्ष गोविन्द प्रसाद आर्य, विमल शास्त्री, जोधपुर जिला संचालक महेश आर्य, जिला मन्त्री सुन्दर आर्य, शिविर सह संयोजक सेवाराम आर्य, संरक्षक आर्यवीर दल जोधपुर रामेश्वर जसमतिया, हरिसिंह साँखला, नरपत सिंह गहलोत, जससिंह गहलोत (पालड़ी), कैलाशचन्द्र आर्य ने शिविर में सहयोग के लिए धन्यवाद दिया।

छात्राओं द्वारा न्यास में स्वामी दयानन्द चित्रावली का अवलोकन

राष्ट्रीय सेवा योजना के अन्तर्गत राजकीय बालिका माध्यमिक विद्यालय, पूंजला की छात्राओं ने महर्षि दयनन्द की चित्रावली का अवलोकन किया । जहाँ आचार्य अशोकजी आर्य द्वारा स्वामी जी के द्वारा किये गये कार्य जिसमें नारी उत्थान, सती-प्रथा, बाल विवाह, छुआछूत व मानव मात्र के उपकार और वेदो कीी ओर लोटो के सन्देश आदि बालिकाओं को जानकारी दी ।

मंत्री किशनलाल आर्य व कैलाश चन्द्र आर्य ने सभी बालिकाओं को महर्षि दयानन्दजी के कलेण्डर भेंट किये । 60 बालिकाओं ने बड़े उत्साह से और यहाँ पर आने व सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने व स्वामीजी के बताये मार्ग पर चलने का संकल्प लिया । अध्यापिका श्रीमती भावना परिहार को एक सत्यार्थ प्रकाश की प्रति भेंट की । सभी को अल्पाहार करवा कर विदा किया ।

सार्वदेशिक आर्य्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली, भारत के प्रधान स्वामी बलदेवजी का निधन

सार्वदेशिक आर्य्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली एवं महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास के प्रधान स्वामी बलदेव आचार्य का निधन दिनाक 28. 1. 2016 को हो गया जिसका अन्तिम संस्कार वैदिक रीति से दिनाकं 29. 1. 2016 को दयानन्द मठ रोहतक, हरियाणा में उनके शिष्य प्रख्यात योगगुरु बाबा रामदेव जी ने मुखाग्नि दे कर किया गया ।

आज दिनांक 30. 1. 2016 को महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास के कार्यकारी प्रधान एवं राजस्थान आर्य्य प्रतिनिधि सभा जयपुर के प्रधान विजय सिंह भाटी के सानिध्य में स्वर्गीय आचार्य बलदेव जी को शोक सभा रक्खी गयी ।

प्रधान विजयसिंह भाटी ने श्रद्धांजलि देते हुए कहा कि आचार्य बलदेवजी महर्षि दयान्नद सरस्वती के सच्चे अनुयायी, एक आदर्श आचार्य, सच्चे गौ भक्त, राष्ट्र चिन्तक, युवाओं के प्रेरणा स्रोत थे । जिन्होंने अपना पूरा जीवन वैदिक शिक्षा एवं गौ रक्षा के प्रचार प्रसार में लगा दिया । उन्हें सच्ची श्रद्धांजली तभी होगी जब सभी देश के आर्यजन मिलकर महर्षि दयानन्द सरस्वती के कार्यों को घर घर में वैदिक सिद्धान्तों को पहुँचा सकें । श्रद्धाजलि देने वालों में श्रीमती चन्द्राजी जसमतिया, नरेद्र आर्य, जयसिंह पालडी, रामेश्वर जसमतिया, रमेश मेहरा, सेवाराम जांगिड़, ओमप्रकाश आसेरी, बुद्धिप्रकाश आर्य, हेमसिंह, तीर्थलाल आसेरी, प्रवीण भाटी, हनुमानराम, नवरंगलाल आर्य, नरपतसिह गहलोत, कमलकिशोर आर्य, कैलाशचन्द्र आर्य, विक्रमसिंह, विमल शास्त्री आदि अनेक आर्यजन उपस्थित थे ।

राजकीय बालिका माध्यमिक विद्यालय, पूंजला की छात्राओं द्वारा
स्मृति भवन न्यास में महर्षि दयानन्द की चित्रावली का अवलोकन करते हुए

Postal Reg. Jodhpur/434/2015-17 Date Of Posting 9,10-02-2016

स्मृति भवन न्यास जोधपुर के प्रधान व पदाधिकारी
शिविरार्थियों के साथ हवन करते हुए

सत्वाधिकारी महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास के लिए प्रकाशक व मुद्रक विजयसिंह भाटी द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, महर्षि दयानन्द मार्ग, मोहनपुरा पुलिया के पास जोधपुर (राज.) से प्रकाशित एवं सैनिक प्रिण्टर्स, मकराणा मौहल्ला केरू हाऊस जोधपुर फोन 9829392411 से मुद्रित।

सम्पादक फोन नं. 0291-2516655